CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अकबर

डा० आनन्द कृष्ण

5245

प्रकाशन विभाग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय इतिहास के निर्माता

अकबर

लेखक : डा० आनन्द कृष्ण
रीडर, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माघ 1893 ● जनवरी 1972

मूल्य : 2·75

State Museum Library
5245
Lucknow

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-1 द्वारा प्रकाशित ।

क्षेत्रीय कार्यालय :

बोटावाला चेम्बर्स, सर फीरोजशाह मेहता रोड, बम्बई-1

आकाशवाणी भवन, कलकत्ता-1

शास्त्री भवन, 35, हेडोस रोड, मद्रास-6

आरसी प्रेस, देशबन्धु गुप्ता रोड, नई दिल्ली-55 द्वारा मुद्रित ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय इतिहास के निर्माता ग्रंथमाला

प्रकाशन विभाग 'आधुनिक भारत के निर्माता', 'भारत के गौरव' और 'भारत के अमर चरित' ग्रंथमालाएं निकाल चुका है। अब आपके सामने 'भारतीय इतिहास के निर्माता' ग्रंथमाला प्रस्तुत की जा रही है। इस माला में छत्रपति शिवाजी, रानी लक्ष्मीबाई, रणजीत सिंह, अशोक, राणा प्रताप, अकबर, गौतम बुद्ध आदि के प्रामाणिक जीवन-चरित प्रकाशित किए जाएंगे।

इन पुस्तकों में इन ऐतिहासिक व्यक्तियों के व्यक्तित्व और कार्य को रोचक ढंग से प्रस्तुत करने की कोशिश की जाएगी, जिससे पाठकों को उनके कार्य के महत्व का ज्ञान हो और उनके समय के इतिहास की भी जानकारी हो।

इस माला में सबसे पहले हम सम्राट अकबर की जीवनी प्रस्तुत कर रहे हैं। इस छोटी सी जीवनी में विद्वान् लेखक डा० आनन्दकृष्ण, रीडर, बनारस हिन्दू विश्व-विद्यालय ने उसकी बहुमुखी प्रतिभा का दिग्दर्शन कराया है। अकबर एक महान् सेनापति, कुशल प्रशासक और राजनीतिज्ञ होने के साथ-साथ समाज और धर्म-सुधारक भी था। उसने न केवल मुग़ल साम्राज्य का विस्तार किया बल्कि अपनी अद्वितीय सूझ-बूझ से प्रशासन में उन उदार तत्वों का समावेश किया जिनके आधार पर साम्राज्य एक शताब्दी तक टिका रहा और जिनकी अवहेलना करने पर उसका पतन हुआ। आज से चार सौ वर्ष पूर्व अकबर ने हिन्दू और मुसलमानों को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयास किया और धार्मिक सहिष्णुता का आदर्श प्रस्तुत किया। प्रबल धर्म-जिज्ञासा से प्रेरित होकर उसने अनेकों धर्मों का अध्ययन किया और धार्मिक भेदभाव नष्ट करने की कोशिश की जो उस युग के लिए बहुत बड़ी बात थी। उसके शासन का उद्देश्य प्रजा का हित था जिसके लिए उसने आजीवन प्रयत्न किया और इतिहास में अपना नाम अमर कर गया।

स्वतन्त्र राष्ट्र की सुरक्षा के लिए चरित्र-निर्माण का कार्य सब कामों से अधिक जरूरी है। हमारे बच्चे इन वीरों के चरित्र से प्रेरणा पाएंगे, हम ऐसी आशा करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

		पृष्ठ
1 :	अकबर का जन्म और बचपन: अकबर का जन्म, शिक्षा, हुमायूं की मृत्यु, अकबर और हेमू, अकबर की जीत, किस्सों का शौक, बैराम खां के प्रभाव से मुक्ति, मालवा की लूट, धाय भाई का उपद्रव, शिकार का शौक, ईश्वर में विश्वास और निडरता, साहसी अकबर, शक्ल-सूरत ।	1
2 :	राजपूतों से संबंध, आमेर की राजकुमारी से विवाह, धार्मिक सहिष्णुता, जज़िया बंद, रानी दुर्गावती की हार, कुरुक्षेत्र के मेले में अकबर, मेवाड़ पर आक्रमण, चित्तौड़ का साका, रणथंभौर का घेरा, सलीम का जन्म और सीकरी का निर्माण, अकबर के युग में मंदिरों का निर्माण, अंग्रेज यात्री का सीकरी वर्णन, गुजरात पर विजय, अकबर की सनक ।	18
3 :	शासन-प्रबंध में सुधार: बदायूनी और अबुल फ़जल, हल्दी घाटी की लड़ाई, टोडरमल के शासन सुधार ।	39
4 :	धार्मिक एकता: दीन-ए-इलाही, अकबर और जैन मुनि, धर्म सुधार की लहर, अबुल फज़ल और फैज़ो, धार्मिक एकता की ओर झुकाव, सब धर्मों में अच्छाई, दीन-ए-इलाही की शुरुआत, दीन-ए-इलाही का विधि-विधान, मुसलमान नाराज, बाल विवाह पर रोक, दीन-ए-इलाही विफल, अकबर का विद्या-प्रेम ।	47
5 :	महाभारत का फारसी अनुवाद, अब्दुर्रहीम खानखाना, अंग्रेज व्यापारी, सलीम का विवाह, सती रोकी, बीरबल की मृत्यु, कश्मीर पर विजय ।	62
6 :	दक्षिण विजय का प्रयत्न, हिजरी संवत के हजार वर्ष, पुर्तगालियों का खतरा, अहमदनगर पर चढ़ाई, तीन वर्ष का अकाल, असीरगढ़ पर कब्जा ।	70
7 :	अकबर के अंतिम दिन: अंग्रेज़ और पुर्तगाली, सलीम का विद्रोह, अबुल फ़ज़ल की हत्या, सलीम से मेल व दानियाल की मृत्यु, सलीम आगरा में, अकबर की अंतिम बीमारी, अंतिम क्षण सलीम को ताज, अकबर की मृत्यु पर शोक ।	77
8 :	अकबर अपने पुत्र जहांगीर की नजर में ।	88

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1

मुगल वंश का मूल मध्य एशिया में था। यह वंश तुर्क जाति का था और चगता या चगताई नाम से मशहूर था। इस वंश का उत्थान तैमूर के काल से होता है। तैमूर अपने समय का बहुत बड़ा विजेता हुआ और उसने दिल्ली पर भी 1398 में धावा किया था, पूर भारत में साम्राज्य की स्थापना उसका उद्देश्य न था। तैमूर के समय से ही इस वंश में एक से एक कलाप्रेमी सम्राट होते गए, जिनमें कवि, चित्रकार, पुस्तकप्रेमी, और लेखक हुए। इस वंश का साम्राज्य तैमूर के बाद कई भागों में बंट गया, जिसकी भिन्न-भिन्न शाखाएं मध्य एशिया, ईरान और आधुनिक अफगानिस्तान के कुछ भागों में राज्य कर रही थीं। इनमें परस्पर लड़ाई-झगड़ा चलता रहता। इन्हीं में से एक शाखा ने हिरात को अपनी राजधानी बनाया जो पंद्रहवीं सदी में कला, साहित्य, और विद्या का एशिया में सबसे बड़ा केन्द्र हुआ।

दूसरी ओर इस वंश का संबंध प्रसिद्ध चंगेज़ खां के कुल से भी था। पंद्रहवीं शती में चंगेज़ खां के कुल की एक कन्या तैमूरी वंश में आई। वह चंगेज़ खां की पोती और बाबर की दादी थी। बाद के मुगलों को जितना अभिमान अपने तैमूरी वंश का था, उतना ही चंगेज़ खां के रक्त का भी। स्वयं चंगेज़ खां का कला और विद्या-प्रेम इतिहास में विख्यात है।

यद्यपि तैमूर ने भारत पर आक्रमण किया था, परन्तु मुगल वंश का भारत से संबंध बाबर के काल से होता है। बाबर का पैतृक राज्य साधारण ही था। उसके पड़ोसी भाई-बंद बराबर उसे सताते रहे। बाबर ने अपने जीवन में अनेक ऊंच-नीच देखे थे। अंत में ऊब कर उसने काबुल में अपने पैर जमाए पर वहां भी उसे चैन न मिला तो उसने भारत की राह पकड़ी। भारत में उस समय अफगान लोदियों का राज्य था। उनकी आपसी लड़ाइयों से उत्तर भारत में अव्यवस्था फैली हुई थी। मेवाड़ सम्राट संग्राम सिंह के हृदय में भारत से लोदियों को निकालने की उमंग हिलोरें ले रही थीं। उसने कांटे से कांटा निकालना चाहा और बाबर को निमंत्रण दिया। बाबर ने सोचा कि एक बार और भाग्य आजमा लिया जाए। उसने आक्रमण किया और 1526 में पानीपत के प्रसिद्ध युद्ध में लोदी सुलतान इब्राहीम उसके हाथ पराजित हुआ। इस प्रकार भारत में मुगल वंश की स्थापना हुई। कुछ ही समय बाद बाबर ने महाराजा संग्राम सिंह (राणा सांगा) को भी परास्त किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाबर विद्या और कला का प्रेमी था। उसने अपना आत्मचरित लिखा है। यह तुर्की भाषा का बहुत अच्छा ग्रन्थ है। बाबर ने भारत में कई बाग बनवाए। थोड़े ही समय बाद उसकी मृत्यु हो गई और उसका पुत्र हुमायूं गद्दी पर बैठा।

हुमायूं भी कला प्रेमी था, परन्तु राजनीति में कुशल न था। उसके भाग्य ने साथ न दिया। कुछ ही वर्ष राज्य कर पाया था कि उसे शेरशाह ने हरा दिया और वह आश्रय खोजता सिंध प्रदेश के रेगिस्तान में भटक रहा था कि उसने शेख अली अकबर जामी की बेटी हमीदाबानू को देखा। हमीदाबानू उस समय चौदह वर्ष की ही थी पर हुमायूं उस पर मुग्ध हो गया। हमीदाबानू की मंगनी किसी और से हो चुकी थी। पर हुमायूं ने इतना आग्रह किया कि शेख जामी को यह संबंध स्वीकार करना ही पड़ा। 1541 में उन दोनों का विवाह हो गया। हुमायूं के साथ वह उमरकोट आ गई।

अकबर का जन्म

उमरकोट के हिंदू राजा ने हुमायूं को कुछ फौजी सहायता दी। हुमायूं ने आस-पास हाथ-पैर मारे परन्तु उसे कुछ विशेष सफलता न मिली। कुछ समय बाद हमीदाबानू से एक बालक का जन्म हुआ। उसका नाम अकबर (महान) रखा गया। उसके अन्य नाम बद्रुद्दीन और मुहम्मद भी थे। बद्रुद्दीन का अर्थ होता है धर्मचंद्र। अकबर शाबान मास की पूर्णमासी (अर्थात् 23-24 नवंबर 1542) की रात में उत्पन्न हुआ था। शायद इसी कारण उसका नाम चंद्रमा पर, बद्रुद्दीन रखा गया था। परन्तु उस समय समाज में जादू-टोने में बहुत अंधविश्वास था। हुमायूं आदि के मन में यह भय था कि बालक की ठीक-ठीक जन्मतिथि जानने से शत्रुओं की उसे नजर लग जाएगी। वर्षों तक तो अकबर को बाहर निकाला ही नहीं गया। 1546 में अकबर की सुन्नत हुई, तब पहले-पहल बाहरी लोगों ने उसे देखा। उस समय भी शुभचिंतकों को ऐसा लगा कि बालक की जन्मतिथि लोगों को ज्ञात न हो तो अच्छा। अतएव हुमायूं ने बद्रुद्दीन नाम बदलकर जलालुद्दीन कर दिया। गणना के अनुसार जलालुद्दीन से रजब महीने की पांचवी तारीख पड़ती। इसी कारण इतिहास में अकबर, जलालुद्दीन मुहम्मद के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

अकबर के जन्म के समय हुमायूं बुरी हालत में था। उसे कहीं ठौर-ठिकाना न था। ऐसे समय में 1542 में हुमायूं को जब यह संतान प्राप्त हुई तो उसने अल्लाह का शुक्र माना। हुमायूं के साथ जो गिने-चुने साथी बच रहे थे उन्हें कस्तूरी के टुकड़े बांट कर उसने अपना उल्लास प्रकट किया। यह बालक आगे चलकर भारत में मुगल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक हुआ और इसी ने भारत की संस्कृति में क्रांति ला दी।

शिशु अकबर शीघ्र ही हुमायूं से बिछुड़ गया। हुमायूं सिंध से निराश हो जब बलूचिस्तान की ओर जा रहा था, तो उसके भाई अस्करी ने उस पर आक्रमण किया। हुमायूं तो भाग निकला, पर अकबर अस्करी के घेरे में आ गया। अस्करी ने शिशु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अकबर को बड़े प्रेम से रखा। उधर हुमायूं को कुछ समय बाद, ईरान के शाह तहमास्प की सहायता प्राप्त हो गई और वह भारत की ओर चल पड़ा। रास्ते में बहुत से घुड़-सवार और पैदल उसके साथ हो लिए और उसने कंदहार पर, जो अस्करी के कब्जे में था, अधिकार कर लिया। काबुल पर उसका भाई कामरान अधिकार जमाए हुए था। वह काबुल छोड़कर भाग गया। हुमायूं को काबुल जीतने में कठिनाई न हुई। वहीं हुमायूं ने अकबर और हमीदाबानू को भी बुलवा लिया। हुमायूं आसपास के क्षेत्रों में शांति स्थापित करने में लगा था कि कामरान ने काबुल पर धावा बोल दिया और जब हुमायूं बाहर ही था, उसने काबुल-दुर्ग पर अधिकार कर लिया। कुछ समय बाद हुमायूं ने काबुल घेर लिया तो अत्याचारी कामरान ने शिशु अकबर को किले की दीवार पर रख दिया, कि हुमायूं के सैनिक उस ओर मार न कर सकें। ईश्वर ने ही अकबर को बचाया। शीघ्र ही काबुल के किले पर हुमायूं का पुनः अधिकार हो गया।

शिक्षा

अकबर की शिक्षा कामरान ने प्रारंभ करा दी थी। ऐसा जान पड़ता है कि उसे अक्षर-ज्ञान भर हो पाया। जहांगीर के आत्मचरित से भी यही ज्ञात होता है। उसका कोई हस्तलेख नहीं मिला है। पर आईन-ए-अकबरी में लिखा है कि वह शाही कागज-पत्रों पर अपने हुक्म को चिन्ह रूप में निश्चित अक्षरों में लिख देता था। ऐसा अनुमान है कि एक ग्रन्थ पर उसने 'अल्लाह' शब्द अपने हाथ से लिखा है। परन्तु वह तीव्र-बुद्धि था। उसमें किसी बात की तह तक पहुंच जाने की अपूर्व क्षमता थी। बचपन में उसने भले ही किताबी पढ़ाई न की हो, परन्तु उसने धीरे-धीरे संसार का अध्ययन अवश्य ही कर लिया।

हुमायूं जब शाह ईरान का अतिथि था तो उसने दो चित्रकार रखे थे। ऐसा जान पड़ता है कि अकबर ने इनसे चित्रकला भी सीखी थी। भले ही वह कोई प्रसिद्ध चित्र-कार न बन सका परन्तु उसने कला का मर्म समझ लिया था। उसने चित्रकला, भवन-निर्माण या वास्तुकला तथा संगीत को बढ़ावा दिया। उसके जमाने की कला मुगल कला के नाम से प्रसिद्ध हुई और पीढ़ियों तक चलती रही।

भारत में उस समय शेरशाह का भतीजा सिकंदर सूर हुमायूं का प्रतिद्वन्द्वी था। परन्तु सिकंदर सूर में शेरशाह की महानता न थी। भारतीय जनता अफगानों के अत्या-चार और आपसी लड़ाई से त्रस्त थी। इस गड़बड़ी का लाभ उठा कर हुमायूं 1554 में सूरी पर चढ़ाई पर चल पड़ा। कहते हैं एक रोज़ वह घूमने निकला। उसने सोचा कि पहले तीन व्यक्तियों के नाम से वह भविष्य-फल निकालेगा। पहला व्यक्ति 'दौलत' मिला, दूसरा 'मुराद' (इच्छित)। दीवान-ए-हाफिज़ से लोग भविष्य-फल निकाला करते हैं। हुमायूं ने सोचा कि हाफिज़ में भी देख लिया जाए। उसने जो पत्रा खोला तो उसमें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी दौलत और हुमायूं शब्द मिले। सबने इसे शुभ माना। 1556 में हुमायूं ने दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार कर लिया। परन्तु बंगाल-बिहार, गुजरात एवं काबुल जैसे सुदूर प्रांतों में अभी भी अफगानों का जोर था। हुमायूं के भाई-बंद भी उत्पात मचाए रहते।

हुमायूं की मृत्यु

पुस्तक-प्रेमी हुमायूं अपने पुस्तकालय में था। कहते हैं दिल्ली के पुराने किले में वह भवन आज भी मौजूद है। इस भवन की सीढ़ियां सचमुच ही बेढब हैं। हुमायूं पुस्तकालय से उतर ही रहा था कि उसने नमाज़ की अज़ान सुनी। उसका ध्यान बट गया, वह सीढ़ियों पर लड़खड़ाया और गिर पड़ा। उसे सख्त चोट आई। कई दिनों तक वह मृत्यु से जूझता रहा। अंत में उसके प्राण-पखेरू उड़ गए। हुमायूं की दशा सुनकर ही गड़बड़ी की आशंका होने लगी। उसका वेश पहन कर एक सरदार झरोखे पर बैठता कि हुमायूं की मुमूर्षु स्थिति जानकर गड़बड़ी न फैल जाए। अकबर अमृतसर के निकट कलानौर में था। जल्दी-जल्दी में वहीं 14 फरवरी 1556 को शुभचिंतकों ने अकबर की ताजपोशी की, फिर वह दिल्ली दौड़ा आया।

इस प्रकार तेरह वर्ष से तनिक ही अधिक उम्र में अकबर पर मुगल साम्राज्य का भार आ पड़ा। वस्तुतः उस समय मुगल साम्राज्य नाममात्र को था। जितने क्षेत्र पर स्वयं अकबर का अधिकार था, वही उसके अधीन माना जा सकता है। चारों ओर शत्रु ही शत्रु थे। हुमायूं साम्राज्य को जमा न पाया था। अफगान अब भी प्रबल थे, राजपूत स्वतंत्र थे। दूसरी ओर मुगलों में न तो एका था न किसी का अंकुश। ऐसे में अकबर की शक्ति का मुख्य स्रोत बैराम खां था। यह अत्यंत दूरदर्शी, कूटनीतिज्ञ और योद्धा था। हुमायूं के समय से यह अकबर का संरक्षक था। जब अकबर युवराज के रूप में पंजाब में मुगल शासन को ठीक कर रहा था उस समय भी वह बैराम खां की देखरेख में था। इस काल से ही अकबर को युद्धों में सफलता मिलने लगी थी। वह राजनीति और रणनीति में बराबर प्रशिक्षित हो रहा था।

परन्तु किशोर अकबर पर बैराम खां का ही अधिकार न था। अकबर को बचपन में कई धायों ने दूध पिलाया था, उनमें जीजी अंगा और माहम अंगा प्रमुख थीं। मुगल काल में दूध का बड़ा महत्व था। ऐसा माना जाता कि बच्चे को मां या धाय के दूध के साथ अनेक अच्छे-बुरे संस्कार मिलते हैं। अतः उच्च वंश और गुणवाली धायों को राजकुमारों को दूध पिलाने के लिए नियुक्त किया जाता था। मुगलों में ऐसी धायों के प्रति विशेष स्नेह होता। फिर अकबर जैसे व्यक्ति का तो स्नेह असाधारण ही रहा होगा। इनमें जीजी अंगा के पति को हुमायूं ने ही अतगा खां (धाय-पति जो पितृवत् हो) की उपाधि दी थी और इनके एक पुत्र को मिर्जा अज़ीज कोका (धाय भाई) की। इस स्नेह का लाभ उठा कर ऐसे धाय भाई मनमानी किया करते। अकबर भी जहां तक संभव होता इन्हें तरह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दे जाता। कभी-कभी ये धायें अकबर से कह-सुनकर क्षमादान प्राप्त कर लेतीं। इस प्रकार इनका वर्ग भी अकबर पर नियंत्रण करता। परन्तु बैराम खां में योग्यता थी और इन धाय भाइयों में निरंकुशता। हुमायूं-काल से इधर बीच में मुगल-साम्राज्य का जो पुनः स्थापन हुआ उसका मुख्य श्रेय बैराम खां को ही था।

अकबर और हेमू

बैराम खां की सहायता से अकबर ने शेरशाह के वंशजों को नियंत्रित करने का बीड़ा उठाया। उसके हाथ से दिल्ली और आगरा भी निकल गए थे। बैराम खां अकबर के साथ-साथ पंजाब में उलझा हुआ था कि अफगानों की एक शाखा का मंत्री हेमू (हेमचन्द्र) चढ़ आया। हेमू घूसर बनिया था और वह इतना प्रबल हो उठा था कि उसने विक्रमादित्य की उपाधि धारण कर ली। इस प्रकार वह नाम-मात्र को ही सूरी वंश के अधीन था। हेमू ने शीघ्र ही ग्वालियर-आगरा पर अधिकार कर लिया, पूर्व में स्थित मुगल सेनापतिगण उसे रोकने में असमर्थ रहे। शीघ्र ही उसका दिल्ली पर अधिकार हो गया। निदान पश्चिम से बैराम खां के नेतृत्व में अकबर ने उसे रोका।

पानीपत के प्रसिद्ध मैदान में हेमू की विशाल सेना के सामने मुगल सेना तुच्छ दीखती थी। स्वयं हेमू हवाई नामक एक विशाल हाथी पर सवार हो सैन्य संचालन कर रहा था। मुगल सेना में दहशत थी। दिल्ली से भागे हुए लोग आतंकित थे। तरदी खां इन भग़ोड़ों का नेता था। बैराम खां ने तरदी खां को मौत की सज़ा दिलवाई और इससे मुगल सेना कुछ नियंत्रण में आकर लड़ने को कटिबद्ध हुई।

कुछ शुभचिंतकों ने सलाह दी, अकबर भारत छोड़ काबुल चला जाए। पर ऐसे खतरे मोल लेना तो अकबर के स्वभाव में था। पहली ही लड़ाई में अकबर की सेना ने हेमू का बहुत-कुछ सामान छीन लिया। बैराम खां ने अकबर को तो सुरक्षित स्थान पर छोड़ा और वह स्वयं सेना लेकर आगे बढ़ा। ऐसा जान पड़ा कि मुगल दल पर हेमू की सेना छा जाएगी। हेमू ने अपने 1500 हाथियों को मध्य भाग में बढ़ाया। इससे मुगल सेना में गड़बड़ी फैल गई और ऐसा जान पड़ा कि हेमू की सेना मुगलों को रौंद देगी। पर संयोगवश हेमू की एक आंख में तीर लगा जो उसके सिर को छेद कर दूसरी ओर निकल आया। फिर क्या था, हेमू के दल में भगदड़ मच गई। हेमू का महावत हवाई (हाथी) को भगाकर ले जा रहा था पर हेमू समेत पकड़ा गया। जब वह अकबर के सामने लाया गया तो बैराम खां ने प्रार्थना की कि हज़रत इसे मारकर गाज़ी की उपाधि धारण करें, पर अकबर को यह स्वीकार न हुआ, हेमू को और लोगों ने मार डाला।

इस अवसर पर एक मनोरंजक घटना का पता चलता है—वस्तुतः अकबर बचपन में चित्रकारी किया करता था। एक बार उसने एक रुंड-मुंड का चित्रण किया था, उस समय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किसी ने पूछा कि यह किसका चित्र है तो अकबर ने जवाब दिया--हेमू का। हेमू जब बंदी होकर आया तो अकबर को वही घटना याद आ गई। उसे सुनाते हुए उसने कहा--इसे तो मैं पहले ही मार चुका हूं।

अकबर की जीत

इस युद्ध से मुगल वंश का सिक्का जम गया, अकबर को दिल्ली-आगरा का क्षेत्र ही न मिला बल्कि अपार संपत्ति तथा हेमू के 1500 हाथी भी प्राप्त हुए। विद्रोहियों की हिम्मत पस्त हो गई। अब अकबर ने चारों ओर की अशांति दबाने का कार्य शुरू किया। इसी समय उसका पहला विवाह भी हुआ।

अकबर में उम्र के साथ-साथ अधिकार की भावना और परिपक्वता आ रही थी। अब वह एक ओर बैराम खां और दूसरी ओर धायों के प्रभाव से मुक्त होने के लिए छटपटा रहा था। बैराम खां साम्राज्य का सबसे प्रमुख स्तंभ था, पर वह उद्दंड था और दूसरों से डाह करता था। धायों के परिवार वाले बादशाह के स्नेह-भाजन होने के नाते मनमानी करते, उनको शिकायतें आतीं तो अकबर उन्हें तरह दे जाता।

अकबर कुछ समय दिल्ली रहा फिर नाव के रास्ते आगरा चला आया। इस समय आगरा उजड़ा-उजड़ा सा था। यहीं उसने बाद में अपनी राजधानी बनाई, लाल किले का निर्माण कराया।

किस्सों का शौक

इस बीच बैराम खां ने अकबर की शिक्षा-दीक्षा का भी प्रबंध किया पर अकबर का अक्षर-ज्ञान में उत्साह न हुआ। यह अच्छा ही हुआ कि अकबर पोथियों में न पड़ा। किताबी इल्म शायद उसकी मौलिकता को नष्ट कर देता पर वह बहुश्रुत था। अंत तक वह लोगों से ग्रन्थ पर ग्रन्थ पढ़वा कर सुनता गया। उसकी बुद्धि ऐसी कुशाग्र थी कि (जहांगीर के शब्दों में) वह गूढ़ से गूढ़ विषय की तह तक पहुंच जाता। उसकी स्मरण शक्ति तो गजब का थी। न जाने कितने ग्रन्थ उसे सुनते-सुनते याद हो जाते। हमें ज्ञात होता है कि अकबर को इस काल में कबूतर बाज़ी का बड़ा शौक था। इसके अतिरिक्त वह हरम की स्त्रियों को किस्से भी सुनाया करता। इनमें एक किस्सा अमीर हम्जा है जिसमें अनेक प्रकार के देव-दानव, परी आते हैं और अमीर हम्जा उन पर विजय प्राप्त करता है। कहते हैं रात-रात बैठकर वह इस किस्से को ऐसे रोचक ढंग से प्रस्तुत करता मानो कोई उस्ताद किस्सा-गो हो। इससे उसकी वाक्-शक्ति का पता चलता है।

बैराम खां ने मीर अबुल लतीफ़ नामक जिस शिक्षक को नियुक्त किया था, वह बड़े ही उदार धार्मिक विचारों का था अतः किशोर अकबर पर इन विचारों की छाप पड़ी जो आगे चलकर, उसके दीन-ए-इलाही में विकसित हुई।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बैराम खां के प्रभाव से मुक्ति

उधर बैराम खां और धाय-वर्गीय लोगों में तनातनी बढ़ती ही जा रही थी। कुछ लोग बैराम खां की जान लेने पर उतारू थे। जब अकबर मानकोट की चढ़ाई पर जा रहा था तो रास्ते में एक स्थान पर छावनी पड़ी। खेल तमाशे हो रहे थे, उसी में हाथियों की लड़ाई भी की गई। अतगों ने इन हाथियों को बैराम खां के तंबू की ओर ठेल दिया। किसी प्रकार बैराम खां बच निकला। उसने अतगा खां और माहम अंगा से इसकी शिकायत की।

पीर मुहम्मद खां पहले बैराम खां का आश्रित था, पीछे वह धाय के दल में जा मिला। इसी समय एक घटना हो गई। पीर मुहम्मद खां बीमार पड़ा, बैराम खां उसे देखने गया, नौकरों ने अंदर न जाने दिया। जब बात आगे बढ़ी तो पीर मुहम्मद खां ने कहा कि नौकरों ने बैराम खां को पहचाना नहीं। इस पर क्रुद्ध हो बैराम खां ने उसके झंडे, निशान, नक्कारे छीन लिए और उसे मक्का भिजवा दिया। उन दिनों हज का मतलब था देश-निकाला। समुद्र-यात्रा विकट थी, अरब और पुर्तगाली यात्रियों को लूट लेते थे। अरब की भूमि में भी लोग लुट जाते थे। कितने ही लोग रास्ते में मार डाले जाते थे या बीमारी से मर जाते थे।

पहले से ही धाय-वर्गीय लोग बैराम खां को नीचा दिखाने पर तुले थे, वे और भी क्रुद्ध हुए। संयोगवश अकबर आगरा से चालीस-पचास मील पर शिकार खेलने गया था। अवसर पाकर माहम अंगा नामक धाय ने योजना बनाई। अकबर को वहां खबर मिली कि उसकी मां (हमीदाबानू) दिल्ली में बीमार है और वह अकबर से मिलने के लिए उत्सुक है। अकबर दिल्ली पहुंचा, इस प्रकार वह बैराम खां से दूर हो गया। दिल्ली के स्थानीय शासक ने उसका भरपूर स्वागत किया। पजाब में धाय-पति अतगा खां था, वह भी आ मिला। ये लोग अकबर को बैराम खां के प्रभाव से स्वतंत्र होने के लिए उकसाने लगे। अकबर से बिना पूछे ही बैराम खां ने कई लोगों को कठोर दंड दिए थे। इससे इन लोगों ने सिद्ध किया कि बादशाह के हाथ में कोई अधिकार ही नहीं है। बैराम खां कभी-कभी बढ़-बढ़ कर बोल उठता था। लोगों ने नमक-मिर्च लगाकर वे बातें भी अकबर के सामने उपस्थित कीं। अकबर के मन में यह भी शक बैठाया गया कि साम्राज्य का सब धन बैराम खां के ही पास जा रहा है। उधर बैराम खां के कुछ साथी भी उसे अकबर के खिलाफ विद्रोह करने के लिए बढ़ावा देने लगे। दूसरी ओर उसके बहुत से साथी किनारा करने लगे। अकबर ने बैराम खां के अधिकार छीन कर उसे जागीर देनी चाही पर बैराम खां ने इस झगड़े से अलग हो जाना ही उचित समझा। वह अकबर से विदा ले स्वयं हज करने चला गया। रास्ते में ही गुजरात में उसे अफगानों ने मार डाला। अकबर ने उसकी विधवा सलीम बेगम से, जो अकबर की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अकबर के दरबार में बैराम खां के दोनों पुत्र हाजिर किए गए ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फुफेरी बहन भी थी, विवाह कर लिया। यह मुस्लिम प्रथा के अनुसार जायज़ था और अकबर ने उसके परिवार की परवरिश की। समय पाकर बैराम खां के पुत्र अब्दुर्रहीम को उसने साम्राज्य का खानखाना नियुक्त किया। यह हिन्दी का प्रसिद्ध कवि हुआ।

मालवा की लूट

कुछ समय बाद धाय-वर्ग से भी अकबर को मुक्ति मिली। मालवा में बाज़ बहादुर स्वतंत्र शासक था। यह संगीत का बड़ा प्रेमी था और भोग-विलास में डूबा रहता था। उसकी हिंदू प्रेमिका रूपमती थी। बाज़ बहादुर और रूपमती की प्रेम कहानी सैंकड़ों वर्षों तक लोगों की ज़बान पर बनी रही।

अकबर ने अपने सेनापतियों को भेज बाज़ बहादुर पर आक्रमण कराया। इधर मुगल सेना बढ़ती गई, उधर बाज़ बहादुर बेसुध पड़ा रहा। जब उसकी नींद खुली तो स्थिति उसके हाथ के बाहर हो गई थी। मुगल सेना ने सहज ही राजधानी मांडू पर अधिकार कर लिया। बाज़ बहादुर के रनिवास की स्त्रियों ने प्राण दे दिए, पर रूपमती मुगलों के हाथ कैद हो गई। उसने जहर खा लिया। मुगल सेनापति पीर मुहम्मद खां और उसके सहायक तथा माहम अंगा के पुत्र अदहम खां ने स्त्रियों पर बड़ा अत्याचार किया। बच्चों को मरवा डाला। मांडू से प्राप्त अपार धन-दौलत, हाथी-घोड़े भी उन्होंने दबा लिए। इस लूटपाट में अदहम खां का विशेष हाथ था। वह अकबर का धाय-भाई होने के नाते बराबर मनमानी करता रहता। अकबर के पास शिकायत पहुंची। वह तूफानी धावा कर मांडू पहुंचा और वहां की स्थिति को हाथ में लाया। फिर भी उसने पीर मुहम्मद या अदहम खां को कोई दंड न दिया। अकबर इन धाय परिवारों की अनेक बुरी बातों को टालता रहता था। एक बार पहले, किसी अन्य प्रसंग में, मिर्जा अज़ीज़ कोका (धाय भाई) की शिकायत होने पर अकबर ने कहा था, इसके और मेरे बीच दूध की धारा बहती है।

धाय भाई का उपद्रव

अदहम खां ने अकबर की सहनशीलता का गलत अर्थ लगाया। उसने समझा कि अकबर डरपोक है, और उसकी मां, माहम अंगा से दबता है। 1562 की मई का महीना था। शाम का समय था। अकबर का नेक वज़ीर शम्सुद्दीन (अतगा खां) कुरान शरीफ़ का पाठ कर रहा था। अदहम खां अपने कुछ साथियों के साथ शम्सुद्दीन के कमरे में घुस गया और उसे मार डाला। इतना ही नहीं, वह उसी उत्तेजित अवस्था में अकबर के कक्ष की ओर बढ़ा पर द्वार-रक्षक ने रास्ता रोक दिया। अकबर उस समय हरम में आराम कर रहा था। शोर सुनकर वह धोती-दुपट्टा पहने दूसरे द्वार से निकल आया तो उसने शम्सुद्दीन की लाश पड़ी देखी। इतने में अदहम ने बादशाह का हाथ पकड़ लिया। ऐसा जान पड़ा मानो वह अकबर का ही वध करेगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अकबर को क्रोध कम ही आता था। ऐसे यूरोपीय यात्री जो अकबर से मिले थे लिखते हैं कि अकबर बड़ा ही क्षमाशील और भीगा-भीगा सा व्यक्ति था पर क्रोध आने पर अकबर, महान लगता था। जहांगीर की आत्मकथा से ज्ञात होता है कि यदि कभी अकबर को क्रोध आ ही जाता था तो शेर की भांति उसकी मूंछ के बाल खड़े हो जाते थे।

पलक झपकते ही अकबर को सारी स्थिति समझ में आ गई। इतिहासकार कन्दहारी का कथन है कि अदहम को इस रूप में देखकर अकबर ने उसे हिंदी में गाली दी,----का बच्चा! फिर उसने अदहम खां के मुंह पर ऐसा घूंसा जमाया कि वह ढुलमुला कर जमीन पर गिर गया। बाद में लोगों ने उस चोट को देखकर समझा कि किसी ने गदा-प्रहार किया था, पर वस्तुतः वह अकबर की बलिष्ठ मुट्ठी ही थी। फिर अकबर ने हुक्म दिया कि यहीं, अटारी से इसे नीचे फेंक दो। नौकरों ने अदहम की जान बचाने के ख्याल से उसे ऐसे अंदाज से नीचे फेंका कि जान बच जाए। पर अकबर के सिर पर तो खून सवार था--पता चला कि अभी अदहम सांस ले रहा है। बादशाह ने फिर उसे अटारी पर उठवा मंगाया और फिर नीचे फेंकवाया। इस बार तो अदहम का सिर ही फट गया और सदा के लिए सो गया। शाही चित्रकारों ने इस भयावने दृश्य को अकबरनामे की उस प्रति में चित्रित किया है, जो अब विक्टोरिया ऐंड अलबर्ट म्युज़ियम, लंदन में है।

अकबर हरम में सीधे उस कमरे में गया जहां माहम अंगा बीमार पड़ी थी। उसने बड़े ही संयत स्वर से माहम से कहा कि मैंने आज अदहम को दंड दिया है। माहम ने रुग्ण स्वर में उत्तर दिया, अच्छा किया। फिर माहम को अदहम के वध का समाचार मिल गया। वह खाट से लग गई और कुछ दिनों के बाद चल ही बसी।

अकबर ने अदहम को प्राणदंड देने में अभूतपूर्व साहस का परिचय दिया। जिस तरह बात बढ़ती जा रही थी, एक न एक दिन यह होना ही था क्योंकि एक ओर हरम के दल का अंकुश दूसरी ओर इन धायों के परिवार वालों की निरंकुशता, इस से सारी व्यवस्था गड़बड़ होती जा रही थी। अकबर की शालीनता के कारण इस दल के लोगों की हिम्मत बढ़ती जाती थी। और, अंत में ईर्ष्यावश अदहम ने साम्राज्य के नेक प्रधान मंत्री का ही वध कर डाला था।

बैराम खां फिर भी एक योग्य राजनीतिज्ञ और सुयोग्य सेनापति था, पर इस धाय-दल के लोग तो विलासी, लोभी और निकम्मे थे। इन लोगों ने अकबर को अपने हाथ की कठपुतली बनाकर रखने की योजना बनाई थी। अकबर जैसा व्यक्ति उसे कैसे सह सकता। अब अकबर इन लोगों के चंगुल से निकलकर पूर्णरूप से अपने पैरों पर खड़ा हो गया।

ऊपर हमने देखा कि अकबर ने अदहम खां को गाली दी। ऐसा जान पड़ता है कि उस जमाने में गाली देने की बहुत चाल थी, जो हम लोगों की पिछली पीढ़ी तक चलती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

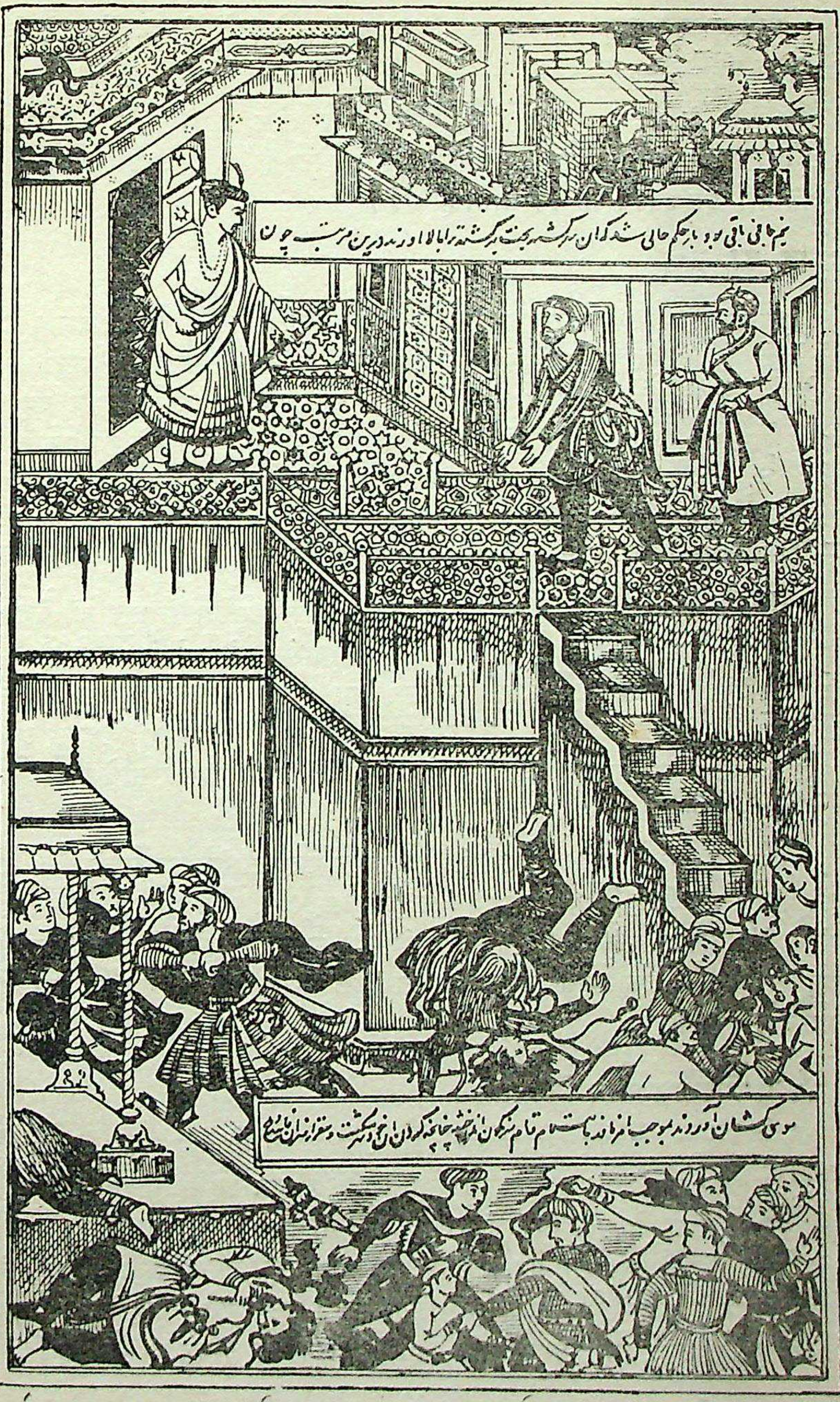

अकबर ने अपने धाय भाई अदहम खां को छत पर से फेंकवा दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आई। आगे चलकर एक बार उसने मुस्लिम धार्मिक नेताओं की हठधर्मिता से चिढ़कर उन्हें गाली दी। इसी प्रकार वह महाभारत के अनुवाद के प्रसंग में बदायूनी से नाराज़ हो गया तो उसने बदायूनी को गाली दी –– हरामखोर, शलजमखोर। मध्य एशिया आदि में शलजम बहुत अधिक और जंगली रूप में होता है। अतः उसे गधों-घोड़ों को खिलाते हैं। इस प्रकार यह एक गाली हो गई।

शिकार का शौक

अकबर में अभी किशोर-सुलभ कई शौक थे। उसके कुल में कबूतर बाज़ी का भी बेहद शौक था। बाबर के पिता की इसी में मृत्यु हुई थी। अकबर का समय भी पहले से ही कबूतर उड़ाने में बीता करता था। इसी प्रकार रात-रात भर वह किस्से सुनाया करता। बाल्यावस्था से ही उसमें जानवरों को समझने की प्रवृत्ति थी। काबुल में अकबर का अधिकांश समय जानवरों को बस में करने में ही बीतता था। बीच-बीच में उसे शिकार की धुन सवार होती। तब वह सब कुछ भूल-भाल कर, दो चार दिनों के लिए शिकार में रमा रहता। अकबर को शिकार का प्रेम बराबर बना रहा।

बाघ के शिकार में उस काल में लोग तरह-तरह की धूर्तता से बाघ को बेबस कर देते, फिर उसे मार डालते। उदाहरण के लिए, बाघ के आने-जाने के स्थान पर घास में गोंद लगा देते और उसके पास बकरी बांधते। जब बाघ बकरी पर टूटता तो उसका पंजा घास में लिपटता जाता। उसी को छुड़ाने की कोशिश के बीच, शिकारी उसे मार डालते। अकबर को ये सब उपाय पसंद न आते। वह बाघ पर सीधे वार करता। (आईन पृ० 294)।

एक बार खबर आई कि बारी के निकट एक नरभक्षी शेर का आतंक है। अकबर उसके शिकार के लिए निकला। इस बार वह नाहर खां नामक हाथी पर सवार था। हांके से शेर निकला और उसने इस हाथी के मस्तक पर अपने पंजे गड़ा दिए। हाथी बोझ से जमीन तक झुक गया पर साथ के शिकारियों ने शेर को मार डाला। (आईन पृ० 294)।

ईश्वर में विश्वास और निडरता

इसी प्रकार एक बार अकबर जब छोटी उम्र का ही था, तब अकेले ही शिकार को निकलगया और उसके सब सरदार और साथी पीछे ही छूट गए। बियाबान में एकाएक उसके मन में आया कि पता नहीं, ईश्वर मुझे इस साम्राज्य का स्वामी रखना चाहता भी है कि नहीं! निदान वह घोड़े पर से उतर पड़ा और उसने अपना घोड़ा भी छोड़ दिया। अकबर ईश्वर के आसरे एक पेड़ के नीचे बैठा रहा। उसके मन में यह विचार आया कि यदि घोड़ा लौटकर न आएगा तो यही समझूंगा कि ईश्वर की मर्ज़ी है कि मैं इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अकबर की शिकारगाह।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साम्राज्य के योग्य नहीं। कुछ समय बाद उसे एक ग्रांतरिक ग्रनुभूति सी हुई। फिर कुछ देर बाद घोड़ा भी ग्रपने ग्राप वहां ग्राकर खड़ा हो गया। ग्रकबर ने इसे ईश्वरीय इच्छा समझा। वह घोड़े पर सवार होकर पुनः ग्रपने साथियों से वापस ग्रा मिला। इससे पता चलता है कि ग्रकबर का झुकाव दर्शन की ग्रोर था। ग्रागे चलकर इस दार्शनिक प्रवृत्ति का ग्रौर विकास हुग्रा।

ग्रकबर के बारे में ग्रबुल फजल ने एक ग्रौर भी मनोरंजक घटना लिखी है। ग्रकबर को जनता का मन जानने की बड़ी इच्छा रहती थी। वह साधु-संतों का तो सत्संग करता ही, उनसे बराबर ग्रपनी प्रजा के सम्बन्ध में पूछता रहता। कभी-कभी वह साधारण वेश में भीड़ में मिल जाता। एक बार वह इसी रूप में जमुना-पार पहुंच गया। संयोगवश लोगों ने उसे पहचान लिया। ग्रकेले, वहां से निकल ग्राना कठिन था। पर ग्रकबर को एक तरकीब ग्राती थी, वह ग्रपनी ग्रांख घुमा कर भेंगा बन जाता। उधर कानाफूंसी हो रही थी कि एक ने कहा — भला यह भेंगा बादशाह हो सकता है! बस भीड़ का रुख दूसरी ग्रोर हो गया ग्रौर चुपके से ग्रकबर चला ग्राया।

ऐसी घटनाएं होती रहतीं। हेमू का हाथी, हवाई, किसी के बस में न ग्राता। हेमू जब पकड़ा गया, तब उसी पर सवार था। हम हाथी के नाम से ही यह ग्रनुमान कर सकते हैं कि भारी-भरकम होने पर भी यह जंतु हवा से बातें करता रहा होगा।

ग्रकबर नरवर से ग्रागरा लौट रहा था। वहां उसने एक शेरनी को तलवार के एक ही वार में साफ किया था। ग्रागरा ग्राने पर उसे हवाई हाथी का ध्यान ग्राया। उसने उसे बस में करने की ठानी। इतने से ही उसे मानो संतोष न हुग्रा। उसने हुक्म दिया कि हथसाल से रणबांका नामक हाथी लाया जाए। रणबांका के हिन्दी नाम से हमें ग्रकबर की भारतीयता का पता चलता है। रणबांका भी वैसा ही दुर्दांत था। ग्रकबर ने हवाई को ग्रंकुश मार-मार कर रणबांका से लड़ने को उकसाया। हवाई ने ग्रंततः रणबांका को हरा दिया, रणबांका भाग खड़ा हुग्रा ग्रौर हवाई उसे खदेड़ता हुग्रा पीछे दौड़ा। ग्रागरा में यमुना पर नावों का पुल था। रणबांका उस पर भागा। हवाई ने वहां भी उसका पीछा नहीं छोड़ा। दोनों भारी भरकम थे, उनके बोझ से नाव का पुल चरमरा उठा। किसी प्रकार जब दोनों हाथी उस पार पहुंचे, तब ग्रकबर ने हवाई को बस में किया। लोग ग्रकबर की निडरता पर हैरान थे। पर प्रायः ग्रकबर यही उत्तर देता : "इन ग्रवसरों पर मैं यही देखता कि परमात्मा की मर्जी होगी तो मैं सकुशल लौट ग्राऊंगा। यदि परमात्मा की इच्छा होगी कि मेरे जीवन का वहीं ग्रंत हो जाए तो उसे कौन रोक सकता है!"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अकबर ने हवाई नामक हाथी को दौड़ाया तो उसने दूसरे हाथी को खदेड़ा और दोनों के बोझ से यमुना का पुल टूट गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साहसी अकबर

1561 में वह मथुरा से आगरा पैदल चल पड़ा। उसने एक दिन में 36 मील तय किए। उसके अधिकांश साथी हार कर बैठ गए—केवल तीन अकबर का साथ दे सके।

1567 में जब वह लाहौर लौट रहा था तब उसने अपना घोड़ा रावी में डाल दिया। वह तो सकुशल पार हो गया परंतु उसके अनेक साथी अपने साज-सामान के साथ नदी में बह गए।

इसी प्रकार 1562 में जब वह एटा (उ० प्र०) के पास पहुंचा तो पता चला कि उस क्षेत्र में कुछ डाकू लोगों को तंग करते हैं। बादशाह के आने की खबर पाकर ये लोग एक गांव में आकर जम गए। इनकी संख्या चार हजार के लगभग थी। फिर भी अकबर ने कुल दो सौ घुड़सवार साथ ले स्वयं उन पर हल्ला बोल दिया। अकबर का हाथी कुल सिंगार एक बार एक गढ़े में गिर गया और अकबर की जान पर आ बनी। फिर भी अकबर बढ़ता ही गया और उसने स्वयं अपने हाथों से इन दुष्टों के छिपने की दीवार तोड़ डाली। फिर तो शाही घुड़सवारों ने आग लगा दी और डाकू उसी में भस्म हो गए।

अकबर में वीरता के साथ-साथ मनुष्यता भी थी। अकबर का सौतेला मामा ख्वाजा मुअज्जम बड़ा क्रोधी था। उसने अपनी स्त्री को मार डालने की धमकी दी थी। सुनते ही अकबर उस अभागी को बचाने के लिए दौड़ा पर तब तक तो ख्वाजा ने हत्या कर डाली थी। उसने उसे सजा दी।

अकबर की यह मर्दानियत काफी बाद तक दिखलाई पड़ती है अतः इसे केवल उसका लड़कपन नहीं कहा जा सकता। 1575 में वह 33 वर्ष का हो चुका था। अफगानों की एक शाखा बिहार-बंगाल में बच रही थी। ये अफगान कभी-कभी विद्रोह कर बैठते थे। अकबर के प्रमुख सेनापति भी आपसी फूट के कारण कुछ विशेष प्रगति न कर कर पाते थे। अतः अकबर स्वयं पटना पहुंचा। अफगानों का सरदार, दाऊद, गंगा के उस पार हाजीपुर में अपने साज-सामान के साथ अड़ा था। बादशाही खेमे में यह राय हुई कि हाजीपुर पर कब्जा कर लिया जाए तो पटना की सुरक्षा हो सकेगी। अकबर अक्सर जान पर खेल जाता था। उसने दाऊद को यह प्रस्ताव भेजा कि क्यों न हम दोनों में द्वंद्व युद्ध हो जाए। इसमें अकबर की जान जा सकती थी। परंतु उसका बहादुरी का स्वभाव न गया था। अन्यथा कहां हिन्दुस्तान का बादशाह और कहां ऐसा खतरनाक खेल! संयोगवश दाऊद ने यह प्रस्ताव न माना और फिर युद्ध के मैदान में सामना हुआ। मुगल सेना ने अफगानों को पुनः मार भगाया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम आगे भी देखेंगे कि बहुत बाद तक अकबर का यह स्वभाव बना रहा। ऐसे अवसरों पर वह बादशाहत का जामा उतार कर मर्द की भांति व्यवहार करता।

शक्ल-सूरत

अकबर का युवावस्था में क्या स्वरूप रहा होगा, इसका, अनुमान हम शाही चित्रकारों की बनाई शबीहों से कर सकते हैं। यूरोपीय यात्रियों ने भी उसका वर्णन किया है। उनके आधार पर इतिहासकार विंसेट स्मिथ ने अकबर का निम्नलिखित चित्रण किया है :—

अकबर का रंग गेंहुआ था। वह बहुत लंबा न था, और कुछ दोहरे बदन का था। उसका सीना चौड़ा था, कमर पतली और हाथ लंबे थे। अत्यधिक घुड़सवारी करते-करते उसके पैर तनिक धनुष की तरह झुक गए थे। उसका सिर तनिक दाहिनी ओर ही भंगिमा लिए रहता था। उसका ललाट चौड़ा था और नाक की बनावट ऐसी थी मानों नथुने फूले हुए हों। बाएं नथुने और ओंठ के बीच मटर के दाने के बराबर एक मस्सा था, लोग इसे बड़े सौभाग्य का चिन्ह मानते थे। वह कटी हुई मूंछ रखता था।

यूरोपीय यात्रियों का कथन है कि उसकी आंखे इस प्रकार दपती रहतीं मानों सागर पर सूर्य झिलमिला रहा हो। उसकी आवाज ऊंची थी, उसमें एक अनुगूंज होती थी। कोई भी उसे देखता तो जान जाता कि यही बादशाह है। जहांगीर का कथन है कि लोग उसमें साक्षात् ईश्वर का तेज पाते थे। वह अट्टहास करता था और उस समय उसका चेहरा हंसी के मारे थोड़ा विकृत हो जाता। उसे क्रोध बहुत ही कम आता। वह अत्यंत धीर था। यूरोपीय यात्री हैरान थे कि उसके मन की बात चेहरे के भाव से प्रकट ही न होती। पर क्रोध में उसकी आकृति असह्य हो जाती थी। उसके मूंछ के बाल खड़े हो जाते।

यूरोपीय यात्रियों से ज्ञात होता है कि वह अपने मित्रों और घर के प्राणियों से बहुत प्रेम करता। वह जनसाधारण की बात बड़ी आत्मीयता से सुनता, उनकी छोटी-छोटी भेंट को प्रेम से ग्रहण करता और अपने हृदय से लगा लेता था। उसे आडंबर से चिढ़ थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

2

एक बार अकबर शिकार के लिए जा रहा था। रास्ते में कुछ भारतीय कव्वाल अजमेर के संत की तारीफ में गा रहे थे। अकबर आकृष्ट हुआ। ये संत तेरहवीं शती में हुए और इनकी बड़ी मान्यता थी। जनवरी 1562 में वह अजमेर के प्रसिद्ध मुस्लिम संत शेख मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह में ज़ियारत (यात्रा) के लिए गया। फिर तो वह कई बार इस धार्मिक यात्रा पर पैदल भी गया।

राजपूतों से संबंध

राजस्थान में घुसते ही अकबर का ध्यान राजपूतों की ओर गया। राजपूतों के बिना उत्तरी भारत में साम्राज्य स्थापित करना असंभव था। पिछले मुस्लिम बादशाहों ने राजपूतों को नष्ट करने के प्रयत्न तो अवश्य किए, दो एक बार वे राजस्थान में घुस भी गए थे, परंतु ये विजयें अस्थायी थीं। अकबर ने शीघ्र ही यह अनुभव कर लिया था कि भारतीय जीवन की विविधता को बनाए रखते हुए—अर्थात् सभी धर्मों को अभय देने से—ही मुगल साम्राज्य टिक सकता है। अकबर के पहले सभी कालों में उसी जाति (कबीले) का एकच्छत्र प्रभुत्व हो जाता जिसका बादशाह होता, अन्य सभी वर्ग उपेक्षित या विद्रोही रहते। राजपूतों का भारतीय मुस्लिम साम्राज्य में तो कोई स्थान ही न था। स्वभावत: एक मुस्लिम कबीले को दूसरा कबीला अपदस्थ करता और उत्तर भारत में स्थिरता न आ पाती थी। मुगल राजनीति की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसमें राजपूतों को बराबर का स्थान दिया गया।

हुमायूं के समय से ही यह विचारधारा चल रही थी कि भारत में रहना है तो भारतीयों से संबंध बढ़ाओ। उसने स्वयं एक विवाह भारतीय मुस्लिम कुल में किया और अपने विशिष्ट सरदारों का ब्याह भी यहां के अच्छे-अच्छे मुस्लिम घरों में कराया।

कहते हैं, अकबर का यह प्रस्ताव था कि मुगल और राजपूत, दोनों पक्षों में पारस्परिक विवाह संबंध हों। पर राजपूतों ने केवल अपनी कन्याएं मुगल वंश में देना स्वीकार किया, मुगल कन्याओं को लेना न स्वीकार किया।

आमेर की राजकुमारी से विवाह

अकबर जब अजमेर शरीफ़ को जा रहा था तो रास्ते में राजा भारमल उपस्थित हुआ और उसने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली और अपनी कन्या से अकबर का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विवाह किया। आमेर के राजाओं का वंश तो ऊंचा था, परंतु वे मेवाड़ और जोधपुर के बीच पिस रहे थे। राजपूतों की आपसी फूट के कारण, राजस्थान का एक बड़ी राजनीतिक शक्ति में उदय होना असंभव था। उधर बाबर के हाथों मेवाड़ के राणा सांगा की पहले ही पराजय हो चुकी थी और राजस्थान में मेवाड़ सर्वोच्च न रह गया था। इस बीच अकबर ने भी राजस्थान में अपने हाथ-पांव फैलाने शुरु कर दिए थे। उसने रणथंभौर को घेरा था, पर वह उसे लेने में सफल न हुआ था। बाद में रणथंभौर के स्वामी राय सुरजन ने उसे भेंट भी दी थी।

उत्तर भारत में तो राजनीतिक शक्ति में अकबर का मुकाबला करने वाला कोई न था। आमेर के राजाओं ने बड़ी दूरदर्शिता से उत्तर भारत के भावी नक्शे को समझ लिया था और उससे संबंध जोड़ा। इस प्रकार आमेर का राजवंश अकबरी साम्राज्य का एक प्रमुख स्तंभ हो गया। वहां के राजा मानसिंह का दरबार में विशिष्ट स्थान था और वह मुगल राजनीति को ढालने में हाथ बटाते।

इसी के बाद राजस्थान में मेड़ता का किला अकबर के एक सेनापति हुसैन ने जीत लिया। रणथंभौर की भांति यह भी मेवाड़ के महाराणा के अधीन था। इस किले के रक्षक जयमल थे। बादशाही सेना ने जब उस पर अधिकार कर लिया और फौज भीतर जाने लगी तो मेड़ता के एक क्षत्रिय देवीदास ने उस में आग लगा दी और स्वयं एक टुकड़ी लेकर डट गया। वह तो मारा गया, पर उससे बादशाही फ़ौज की काफी हानि हुई। अब तक यह प्रथा थी कि युद्ध-बंदी दास बना लिए जाते। अकबर ने इस परंपरा को बंद किया।

इस प्रकार बिहार, राजस्थान, मालवा आदि सुदूर प्रांतों पर धीरे-धीरे अकबर का अधिकार बढ़ रहा था। अकबर अभी लगभग बीस बरस का था। क्रमशः उसने धाय-दल और बैराम खां से तो अपने आपको मुक्त कर ही लिया था, साथ ही कुछ अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों से भी—यथा मुनइम खां। मुनइम खां तो एक बार चुपके से भाग निकला था, परंतु पकड़ा गया। जब उसने क्षमा याचना की तो अकबर ने बड़ी सदाशयता से उसे पुनः साम्राज्य का खानखाना (प्रधान मंत्री) नियुक्त कर दिया। हां, उसके अंतर्गत कई प्रांत छिन गए। बाद में वह काबुल में अकबर के भाई मुहम्मद हकीम का संरक्षक नियुक्त हुआ।

उसी समय सैयद अब्दुल मौली लाहौर के कारागार से भाग कर काबुल पहुंचा और वहां उसने एक प्रकार से अधिकार ही जमा लिया। अकबर की विमाता माह चूचक बेगम भी वहां की राजनीति में दखल देती। उसने अब्दुल मौली से अपनी कन्या का विवाह कर दिया। वहां गड़बड़ी में अब्दुल मौली तो मारा गया पर काबुल बदख्शां के प्रभाव में चला गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अकबर के शिक्षण के लिए बैराम खां ने मीर अब्दुल लतीफ़ को नियुक्त किया था। ये ईरान के काज़वीन के निवासी थे। ईरान में शिया संप्रदाय का प्रभाव है। अब्दुल लतीफ़ उदार विचारों के व्यक्ति थे। अतः ईरान में उन पर यह आरोप लगाया गया कि ये सुन्नी हैं। बेचारे भागकर भारत आए। यहां सुन्नियों का जोर था, पर उन्हें लोग शिया समझते थे। विद्वान थे, अतः बैराम खां की दृष्टि से छिपे न रह सके।

धार्मिक सहिष्णुता

अब्दुल लतीफ़ अकबर को किताबी शिक्षा न दे सके परंतु उनके संपर्क से अकबर ने धार्मिक सहिष्णुता और उदारता सीखी। इसी के फलस्वरूप उसमें आगे चलकर सर्व-धर्म-समन्वय की भावना उत्पन्न हुई और दीन-ए-इलाही का प्रादुर्भाव हुआ।

दूसरी ओर राजपूतों के संपर्क में आने पर उसमें भारतीयता और बढ़ी। यहीं से एक नई संस्कृति का जन्म होता है। इसी समय अकबरी दरबार में प्रसिद्ध गायक तानसेन का प्रवेश हुआ। तानसेन रीवां के राजा रामचंद्र बघेला के आश्रित थे। तानसेन का नाम दूर-दूर तक प्रसिद्ध था। उन्होंने प्राचीन शास्त्रीय गायन को नए सांचे में ढाला था, जो आज तक बहुत-कुछ चला आता है। अकबर के दरबार में आकर तानसेन ने भारतीय संगीत को और भी बढ़ाया। उन्होंने मियां को मल्हार, दरबारी कान्हड़ा, मियां की तोड़ी आदि नए रागों को बनाया। इन पर तानसेन के साथ-साथ अकबरी संस्कृति की गहरी छाप है। मार्मिकता और गंभीरता में इन रागों का कोई जोड़ नहीं। तानसेन के रचे ध्रुपद भी मिलते हैं। ये शुद्ध भारतीय परंपरा में हैं। अतः, अकबर ने भारतीय संगीत को पूर्णतः अपना लिया था। तानसेन की वंश परंपरा अब तक चलती, कही जाती है। इस वंश में अनेक रत्न उत्पन्न हुए। तानसेन के चित्र भी मिले हैं।

जज़िया बंद

संयोगवश अकबर शिकार खेलने मथुरा गया था। वहां उसे ज्ञात हुआ कि मथुरा आने पर हिंदुओं को कर देना पड़ता है। उसने यात्री कर उठा दिया। अकबर ने कहा, यह कहां का न्याय है कि ईश्वर की आराधना पर कर लिया जाए! अगले ही वर्ष, अपने राज्याभिषेक की नौवीं वर्षगांठ पर उसने मुस्लिम कानून के अनुसार गैर-मुस्लिमों पर लगने वाले कर——जज़िया को भी उठा लिया। यह एक अनोखी घटना थी। फिर तो दो पीढ़ियों तक जज़िया कर नहीं लगा——औरंगजेब ने 1679 में जसवंत सिंह की मृत्यु के बाद जज़िया कर पुनः लगाया। जज़िया से प्रति वर्ष साम्राज्य को लाखों की आय होती। फिर भी अकबर ने इसे अनुचित माना।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नृत्य और गान का पारखी अकबर।

5245

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रानी दुर्गावती की हार

उस समय की परंपरा थी, यदि राजा अपने पड़ोसियों पर शस्त्र न उठाए, तो वे पड़ोसी ही उस पर टूट पड़ेंगे। अकबर इस सिद्धांत को मानता था। अब उसने साम्राज्य का और विस्तार प्रारंभ किया। गोंडवाना का राज्य महाकौशल से मालवा के पूर्वी छोर तक फैला हुआ था। वहां चंदेलों की शाखा राज्य करती आई थी। इन लोगों ने अनेक थपेड़े झेले थे पर अपनी स्वतंत्रता हाथ से न जाने दी थी। अब वहां का राजा वीर नारायण था और गढ़ मंडला उसकी राजधानी थी। परंतु वास्तविक शासन उसकी मां, दुर्गावती करती। दुर्गावती बहुत ही योग्य शासक थी। उसमें पुरुषोचित गुण थे, वह स्वयं शिकार करती। इस समय गोंडवाना के राज्य के पास बीस हजार घुड़सवार तथा एक हजार हाथी थे।

मुगल सेना से इन चंदेलों ने टक्कर ली। पर संयोगवश वीर नारायण घायल हो गया। उसे किले में ले जाने के समय जो अव्यवस्था हुई, उसमें मुगल सेनापति ने राजपूत सेना को तितर-बितर कर दिया। दुर्गावती को दो तीर लग चुके थे। उसने छुरा मार कर आत्महत्या कर ली। दूसरे दिन वीर नारायण किले से निकल कर आया, पर खेत रहा। अपार संपत्ति मुगलों के हाथ लगी। पर मुगल सेनापति आसफ खां ने उसका बहुत थोड़ा अंश ही सम्राट के पास भेजा। फिर भी अकबर उसे तरह दे गया।

उधर मालवा के सूबेदार अब्दुल्ला खां उज़बेग ने विद्रोह कर दिया था। वर्षा ऋतु होते हुए भी, अकबर स्वयं आगरा से निकला। रास्ते में चंबल पड़ी, बरसात के कारण, उसे पार करना कठिन था। किसी प्रकार पार होकर अकबर बढ़ता गया। उसके साथी पीछे छूट गए और वह केवल 300 आदमियों के साथ मालवा की राजधानी मांडू के पास पहुंच गया। अब्दुल्ला खां ने भाग कर गुजरात में शरण ली। अकबर ने मालवा में अन्य सूबेदार की नियुक्ति की। जब वह मांडू में ही था, तब बुरहानपुर के सुलतान मुबारक शाह द्वितीय की कन्या से उसने विवाह किया।

आगरा लौटने पर उसने शहर से कुछ दूर पर एक नए नगर का निर्माण कराया। इसका नाम उसने नगरचैन रखा जो विशुद्ध भारतीय नाम था। वहां वह कुछ सुख-चैन से रहना चाहता था। पर उसका समय न था। पूर्व में उज़बेगों के दल ने विद्रोह कर दिया। ये उज़बेग यों तो अकबर के समर्थक थे—इन्होंने अकबर का उस समय साथ दिया जब उसका सिंहासन डांवाडोल था। उन्हें अकबर ने जौनपुर में स्थापित कर दिया था। वे सोचते थे कि हमें दूर फेंक दिया गया है। उनमें एका भी खूब था। अब्दुल्ला खां उज़बेग के साथ अकबर सख्ती से पेश आया था, इसका भी उन्हें दुख था। जौनपुर में इनका नेता खान-ए-जमान था। उसने अपनी शक्ति सुदृढ़ कर ली थी। वहां सेना आदि पर खर्च अधिक था ही, इसी की आड़ में उसने शाही खजाने में रुपया जमा करना बंद कर दिया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अकबर ने खान-ए-जमान के पास अपना दूत भेजा, पर उसकी भी ठीक-ठीक खातिर न हुई। अतः अकबर ने उनके विरुद्ध छोटी सी टुकड़ी भेजी। उज़बेगों के विभिन्न दलों ने वर्तमान उत्तर प्रदेश के मानिकपुर, कन्नौज आदि पर अधिकार कर लिया। फिर तो अकबर रात-दिन कूच करता उज़बेगों पर चढ़ आया। मई का महीना था, पर उसने गर्मी की भी पर-वाह न की। उसने कन्नौज से लखनऊ तक का, तीस मील का रास्ता दो दिन में तय किया। सेना को इस तेज़ गति से ले जाना आश्चर्य का ही काम था। विद्रोही अभी तैयार भी न हुए थे कि अकबर उनके सिर पर धमक गया। वे भाग खड़े हुए। शाही सेना के घोड़े तक थक कर चूर हो गए थे, पर अकबर ने हिम्मत न हारी।

विद्रोही भाग कर पटना के निकट हाजीपुर के आसपास डट गए। अकबर चुनार और बनारस होता हुआ, पूरब की ओर बढ़ता गया। अंत में विद्रोहियों ने घुटने टेक दिए। अकबर पुनः नगरचैन (आगरा के निकट) लौट आया। खान-ए-जमान ने माफी मांग ली और वह पुनः जौनपुर का हाकिम बना दिया गया।

पर अकबर नगरचैन में भी सुख से न रह सका। इधर जब वह पूरब में उज़बेगों से उलझा हुआ था, काबुल में उसके भाई मुहम्मद हकीम ने विद्रोह कर दिया। संभवतः जौनपुर में स्थित, उज़बेगों के नेता खान-ए-ज़मान से उसका गुप्त पत्र-व्यवहार भी चल रहा था। उनकी शह पाकर मुहम्मद हकीम लाहौर पर चढ़ आया। उस जमाने की राज-नीति में एक भाई का दूसरा भाई तक सगा न होता। अकबर ने पहले मुहम्मद हकीम को बदख्शां के सुलतान से बचाया था। फिर भी हकीम ने उस भलाई को भुला दियां। समाचार पाते ही अकबर पश्चिम की ओर बढ़ा। परंतु दिल्ली पहुंचते-पहुंचते यह खबर आई कि हकीम डर कर काबुल भाग गया। इधर अकबर के पीठ फेरते ही जौनपुर में उज़बेगों ने हकीम को अपना सम्राट घोषित कर दिया और उसके नाम का खुतबा (बादशाह की उन्नत्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना, इसमें जिसका नाम प्रयुक्त होता है, वही बादशाह माना जाता है) पढ़ डाला। तैमूर वंश के कुछ मिर्ज़ा, जो बादशाह के भाईबंद ही थे, आज के पश्चिमी उत्तर प्रदेश में छोटी-छोटी जागीरों पर थे। इसी बीच उन्होंने भी विद्रोह का झंडा उठाया। क्रमशः इन सबको ठंडा करने के लिए अकबर ने लाहौर से कूच किया। हम ऊपर देख चुके हैं कि यहीं से लौटते समय, उसने अपना घोड़ा रावी नदी में डाल दिया। वह तो तैर कर पार हो गया, पर उसके अनेक साथी बह गए। बाबर ने भी जब भारत पर चढ़ाई की तो रास्ते में जो-जो नदियां पड़ीं, वे उसने तैर कर ही पार कीं। इसी प्रकार हम अकबर के जीवन वृतांत में प्रायः यह पाते हैं कि अकबर मुट्ठी भर सैनिकों को लेकर शत्रु पर आक्रमण कर बैठता। ऐसी घटनाएं तैमूर के समय में भी कई बार हुईं। ऐसी दिलेरी से इन व्यक्तित्वों ने युद्ध का पासा ही पलट दिया।

लाहौर से लौटते हुए अकबर ने एक बड़े शिकार का भी आयोजन किया। पचास-एक मील के घेरे में हांका शुरू हुआ। पांच दिन तक अकबर अनेक प्रकार के जानवरों का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिकार करता रहा। इस घटना के कई चित्र तत्कालीन मुसव्वरों ने बनाए हैं। सभी में एक व्यक्ति, नंगे सिर गधे पर चढ़ाकर घुमाया जा रहा है, दूसरी ओर बादशाह पूरे शिकार में मस्त है। गधे वाली घटना के विषय में इतिहासकार मौन हैं। परंतु ऐसी संभावना है कि किसी ने कापुरुषता दिखलाई, उसी की उसे सज़ा मिली।

कुरुक्षेत्र के मेले में अकबर

चित्रकारों का एक और भी प्रिय विषय है, जिसके दो बड़े ही सुंदर उदाहरण मिले हैं। यह घटना भी अकबर के लाहौर से वापस आते समय हुई। अकबर प्रसिद्ध तीर्थ, कुरुक्षेत्र पहुंचा। वहां सूर्य ग्रहण पर आज भी बड़ा मेला होता है। लोग स्नान करते हैं। उस समय, कुछ साधु-वैरागी भी कुरुक्षेत्र के कुंड में स्नान करने आए थे, परन्तु उनमें यह विवाद था कि कौन दल पहले स्नान करे। आज भी पहले स्नान करने पर झगड़ा होता है। अतएव जब यह विवाद तय न हो सका तो दोनों दलों ने बादशाह से फरियाद की। दोनों ही के अपने-अपने दावे थे, पर बादशाह को कोई भी निश्चित प्रमाण न मिल सका। जान पड़ता है, युवक अकबर को कुछ मसखरी सूझी। उसने कहा--दोनों दल आपस में लड़ लें, जिस दल की जीत हो जाए वही पहले स्नान करे। इस पर एक दल ने फरियाद की कि विपक्षियों के दल में अधिक व्यक्ति हैं। विनोदी अकबर ने कहा कि ठीक है, जिसके पास कम आदमी हों, वह उतने ही शाही सैनिक ले ले। फिर क्या था, किसी ने किसी की दाढ़ी पकड़ी, किसी ने किसी की जटा। इस घमासान का बड़ा मज़ेदार चित्रण अकबर-नामे की शाही प्रति में हुआ। चित्र को देखने से ज्ञात होता है कि दूर पर खड़ा घुड़सवार अकबर भी इस तमाशे का मज़ा ले रहा था।

निदान, अकबर आगरा पहुंचा। तब तक उसके सेनापतियों ने खान-ए-ज़मान और उसके विद्रोही साथियों को घेर रखा था। अकबर की सेना एक साल से लड़ते-लड़ते थक गई थी। फिर भी उसने कुछ चुने हुए साथियों को लेकर मानिकपुर में, स्वयं हाथी पर तैर कर, गंगा पार की। गंगा कुछ बढ़ी हुई थी। शत्रुओं को विश्वास तक न हुआ कि कोई नदी पार कर लेगा। विद्रोहियों की सेना कुछ ही समय बाद भाग खड़ी हुई। उनके सर-दार मारे गए अथवा कैद हुए। इससे अकबर का एक सिरदर्द दूर हुआ।

मेवाड़ पर आक्रमण

अब उत्तर भारत में अकबर का एक मात्र प्रतिद्वंद्वी मेवाड़ का प्रसिद्ध राजवंश था। बाबर ने जब राणा सांगा को हराया, तभी से मेवाड़ की शक्ति कुछ कम हो गई थी। उधर स्वयं मेवाड़ के कठोर नियंत्रण से त्रस्त अन्य राजपूत क्रमशः मुगल दरबार में आ गए थे। इस प्रकार मेवाड़ राज्य धीरे-धीरे अकेला पड़ता जा रहा था। अकबर के साम्राज्य में वही एक कांटा रह गया था। हम देख चुके हैं कि इस समय तक अकबर अपने घरेलू झगड़ों से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

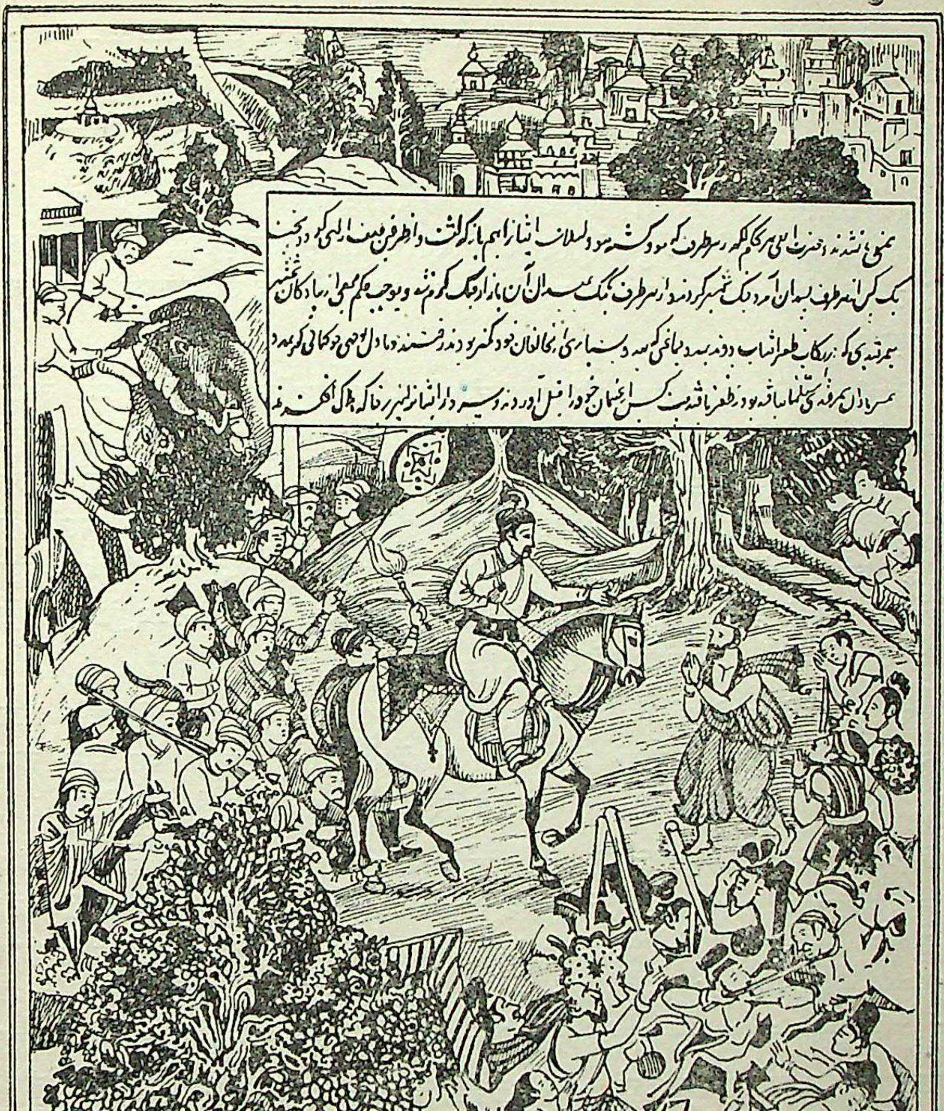

अर्द्ध कुंभ के अवसर पर गिरियों और पुरियों का झगड़ा ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बहुत-कुछ निवृत्त हो चुका था। मालवा, गुजरात आदि को अपने अधिकार में रखने के लिए भी उसे मेवाड़ को जीतना आवश्यक था। मेवाड़ के रहते राजपूतों का विद्रोह करना कभी भी संभव था। अतः अकबर ने अब अपना ध्यान मेवाड़ की ओर केन्द्रित किया।

यद्यपि सांगा के बाद मेवाड़ का राजस्थान में वैसा प्रभाव न रह गया था, फिर भी अभी इस क्षेत्र में कई बड़े-बड़े दुर्ग थे, जिनका सिरमौर था--चित्तौड़गढ़। यह गुजरात की ओर जाने वाले एक राजमार्ग पर अवस्थित था। आज भी यह उस तलहटी पर सीना ताने खड़ा है।

चित्तौड़ ही मेवाड़ के राणा की राजधानी थी, और आधुनिक उदयपुर, जो उसके पश्चिम में पहाड़ियों के भीतर है तब बसना प्रारंभ हुआ था। चित्तौड़ का किला एक पहाड़ी पर है। उसकी ऊंची-ऊंची दीवारों के भीतर अत्यंत विस्तृत क्षेत्र हैं जिनमें अनेक गांव हैं, खेतीवाड़ी के लिए पर्याप्त भूमि है। सबसे बड़ी बात यह है कि उसमें पानी के सोते हैं, जो बारहों मास चलते रहते हैं। अतः बड़े से बड़े घेरे में भी अन्न-जल की कोई कमी नहीं होती। सबसे बढ़ कर वहां जान पर बाजी लगा देने वाले मनचले राजपूत थे। फिर तो यह सर्वथा अजेय ही था।

पर मुगलों से पहले भी चित्तौड़ का पराभव हुआ था। अलाउद्दीन खिलजी और और गुजरात के बहादुरशाह ने इसे जीता था। इसमें निश्चय ही भाग्य का फेर रहा होगा। अन्यथा गोला-बारूद आने के पहले तो चित्तौड़ को अजेय ही होना चाहिए था।

परंतु अकबर काल तक स्थिति बहुत-कुछ बदल चुकी थी। अब तोपें आ गईं थीं। किले की दीवारों में बारूद की सुरंगें लगा दी जातीं और उन के विस्फोट से मोटी-मोटी दीवारें भी ढह जातीं। आक्रमणकारी सेना को अन्दर घुसने की सेंध मिल जाती। तोपों की मार के लिए किले के सामने मचान बनाते, या तोपों को सामने की दूसरी पहाड़ियों पर लगा देते अथवा दीवार के नीचे सुरंग लगाने के लिए चमड़े का छाजनदार एक रास्ता (साबात) तैयार करते। जब इसमें घुसकर आक्रमणकारी दीवारों के नीचे पहुंचने का प्रयत्न करते तो ऊपर से किले के रक्षक उन पर पत्थर और आग बरसाते। बड़ी गहरी मार-काट होती।

राणा उदय सिंह ने चित्तौड़ की रक्षा का भार बदनौर के जयमल के हाथ में सौंपा और वे भीतरी पहाड़ियों में चले गए। अकबर ने पूरी तौर से तैयारियां कर लीं और उसकी तोपें आध-आध मन के गोले उगलने लगीं। सुरंगों के फूटने से एकाध स्थान पर दीवार गिर गई, शाही फौज के कुछ लोग भीतर भी घुसे, परंतु राजपूतों ने उनका सफाया कर दिया और चटपट दीवार भी फिर से खड़ी कर दी। एक बार दो सुरंगें लगाई गईं, दोनों साथ ही फूटने वाली थीं, पर एक ही चली। शाही सैनिक इस बीच बढ़ आए कि दूसरी फूट पड़ी। इसमें बहुत फौजी मारे गए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परंतु धीरे-धीरे राजपूतों की शक्ति क्षीण होती जा रही थी। संयोगवश एक रात एक स्थान की दीवार की मरम्मत का काम चल रहा था। अकबर ने देखा कि मशाल की रोशनी में एक व्यक्ति काम की निगरानी कर रहा है। उसने अचूक निशाना साधा और अपनी ठुसुआं बंदूक, जिसका नाम संग्राम था, दाग दी। निशाना सटीक बैठा और वह सरदार मारा गया। यह और कोई नहीं, जयमल ही था। इससे राजपूतों का दिल टूट गया।

चित्तौड़ का साका

उसी रात शाही सेना ने एक अद्भुत दृश्य देखा। चित्तौड़ के किले में स्थान-स्थान पर आग जल रही थी। अकबर को मान सिंह ने बताया कि इसे जौहर कहते हैं। जब तराजपूत हताश हो जाते हैं तो उनकी स्त्रियां स्वेच्छा से अपने आपको अग्नि को समर्पि कर देती हैं और पुरुष लड़कर मर मिटते हैं। दूसरे दिन यही हुआ और अकबरका चित्तौड़ पर अधिकार हो गया। उसके बाद वहां शाही फौजों ने कत्ल-ए-आम किया। किंतु दूसरी ओर, उसने आगरा के महल में सिंहद्वार पर चित्तौड़ के अमर वीरों जयमल-पत्ता की, हाथी पर सवार, मूर्तियां लगवाईं। राणा उदय सिंह के पुत्र राणा प्रताप ने पहाड़ों में रहते हुए अनेक कष्ट सहे, पर जीते जी अकबर की अधीनता न स्वीकार की। क्रमशः शाही फौजों ने मेवाड़ के बहुत बड़े भाग पर अधिकार कर लिया और प्रताप सिंह बहुत ही कठिन परिस्थिति में आ गया। जहांगीर के समय तक यह युद्ध चलता रहा। फिर, राणा प्रताप के पुत्र अमर सिंह ने कुछ विशेष सुविधाओं के साथ मुगल आधिपत्य स्वीकार कर लिया।

कुछ लोगों ने चित्तौड़ के युद्ध को हिंदू-मुस्लिम द्वंद्व के रूप में चित्रित किया है। वस्तुतः यह दो शक्तियों की टक्कर थी। इनमें मेवाड़ का प्रभुत्व दो पीढ़ियों से घटता जा रहा था, दूसरी ओर मुगल साम्राज्य विकास पर था। एक न एक दिन तो इनमें युद्ध होना ही था। मुगलों के साथ बड़े-बड़े हिंदू सामंत थे। चित्तौड़ के रक्षकों में मुसलमानों की भी महत्वपूर्ण संख्या थी। इनमें कालपी के बंदूकची भी थे। ये अपने निशाने के बड़े सच्चे थे। जब अकबर का चित्तौड़ पर अधिकार हुआ तो ये शाही फौज में मिलकर बाहर निकल गए।

अकबर ने चित्तौड़ विजय के बाद अजमेर की पैदल ज़ियारत की।

रणथंभौर का घेरा

अब रणथंभौर के किले की ओर अकबर का पुनः ध्यान गया। यह भी बड़ा महत्व-पूर्ण दुर्ग था और आज भी राजस्थान के पूर्वी छोर पर उस राजमार्ग पर स्थित है जो मथुरा को बड़ौदा से मिलाता है। इसी पर से पश्चिमी रेलवे की बड़ी लाइन जाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रणथंभौर वस्तुतः चित्तौड़ का उत्तर-पूर्वी प्रहरी था। परंतु चित्तौड़ के पतन के बाद यह हाड़ा वंश के राव सुरजन के अधीन था। अकबर पहले कई बार इस दुर्ग को लेने का असफल प्रयत्न कर चुका था। परंतु चित्तौड़ की पीठ पर होने से, और उधर अकबर की दूसरी समस्याएं होने से, रणथंभौर की विजय बाकी थी। चित्तौड़ विजय के दो वर्ष बाद, 1569 में अकबर ने रणथंभौर पर चढ़ाई की। वस्तुतः चितौड़ का अनुभव उसे प्राप्त था, ये किले गोलाबारी की चपेट में ठहर न पाते। इनका भी एक जमाना था, पर अब वह जमाना बीत रहा था। ये बारूद युग के पहले की चीज़ थे।

अकबर ने स्वयं बड़ी हो मुस्तैदी से आक्रमण की तैयारी की। वह अब इन दुर्गों को जीतने की तरकीब जान चुका था। सामने की पहाड़ी पर भारी तोपें लगाई गईं और तत्कालीन इतिहासकार बदायूनी के अनुसार इन तोपों ने किले की दीवारों को छलनी बना दिया। उधर आमेर के राजा भगवान दास ने जाकर राव सुरजन को संधि के लिए प्रेरित किया। राव को और कोई चारा न सूझा और अकबर को अंततः रणथंभौर मिल गया। इस प्रकार वह राजस्थान की ओर से निष्कंटक हो गया। राव सुरजन को अपनी हार से ग्लानि हुई। वे काशीवास करने चले गए, वहीं उनका देहान्त हुआ। शाही चित्रकारों ने रणथंभौर के घेरे का दृश्य बड़े ओजपूर्ण ढंग से अंकित किया है। रणथंभौर के सामने वाली टेकरी पर शाही तोपें चढ़ाई जा रही थीं, उसका बहुत सुंदर दृश्य शाही चित्रकार मिस्कीन ने प्रस्तुत किया है।

रणथंभौर के घेरे के समय एक घटना हो गई। बीच में जब सुलह की बातचीत चल रही थी तो राव सुरजन ने संधि प्रस्ताव लेकर अपने दो लड़कों को अकबर के खेमे में भेजा। अकबर ने उनका सत्कार किया और उन दिनों की प्रथा के अनुसार उन्हें पोशाक भेंट की। ये लोग भीतर खेमे में जाकर कपड़े बदल रहे थे कि इनके एक नौकर को भ्रम हो गया कि अकबर ने इन लोगों को चुपके से मरवा डाला। बस फिर क्या था, वह क्रुद्ध हो शाही आदमियों की मार-काट करने लगा। कई लोग मारे गए। वह स्वयं भी मारा गया। लोगों ने अकबर से कहा —इसमें रणथंभौर वालों का कुछ षडयंत्र है, परंतु अकबर ने जांच कर यह पाया कि राव सुरजन के लड़कों को इस बात का पता तक न था। अतः उसने उनका कोई नुकसान नहीं किया।

इस प्रकार अकबर ने उत्तरी भारत में बहुत-कुछ अपनी स्थिति दृढ़ कर ली थी। मध्य भारत में कालिंजर का सुप्रसिद्ध किला भी उसके हाथ लग चुका था। परंतु अकबर की संतान जीवित न रहती थी। उसकी अवस्था अब सत्ताईस वर्ष को हो चुकी थी। उस जमाने में इतनी अवस्था तक गद्दी का उत्तराधिकारी न हो तो सारे साम्राज्य में चिंता फैल जाती।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रणथंभौर के घेरे में पहाड़ी पर तोपें चढ़ाई जा रही हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सलीम का जन्म और सीकरी का-निर्माण

हम ऊपर देख चुके हैं कि अकबर प्रति वर्ष प्रसिद्ध मुस्लिम संत मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह की ज़ियारत करने अजमेर जाता। इन्हीं की शाखा के एक अन्य संत, शेख सलीम चिश्ती, आगरा के निकट सोकरी की पहाड़ियों में रहा करते। अकबर शेख सलीम की सेवा में आय गौर कहते हैं कि संत ने उसे वरदान दिया कि शीघ्र ही संतान का मुंह देखोगे। कुछ ही समय बाद उसे समाचार मिला कि उसकी पत्नी को, जो आमेर के राजा भारमल की पुत्री थी, बच्चा होने वाला है। सम्राट ने उसे शेख के आश्रम में भेज दिया। समय आने पर अकबर को पुत्र हुआ जो बाद में जहांगीर के नाम से मुगल सिंहासन पर बैठा। अकबर ने शेख के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए इस शाहजादे का नाम सलीम रखा, और इसे प्यार से वह शेखू बाबा कह कर पुकारा करता। यह बात हमें जहांगीर की आत्मकथा से ज्ञात होती है। इसके बाद तो अकबर के दो और पुत्र तथा तीन कन्याएं हुई जो बहुत समय तक जीवित रहीं। सलीम के उत्पन्न होने पर अकबर ने 1570 में अजमेर की पैदल यात्रा की।

इसी वर्ष अजमेर की वार्षिक यात्रा के लिए जब अकबर पुनः रवाना हुआ तो उसने सीकरी में पड़ाव डाला। वह स्थान उसे भाया। शेख सलीम चिश्ती का वहां होना भी उसके लिए आकर्षण था। इसके पहले राजस्थान आते-जाते वह सीकरी की ओर से अवश्य ही गया होगा, पर इस बार उसके मन में वहां बसने की इच्छा हुई। कहते हैं, पहले वहां मुगल बादशाह शिकार खेला करते थे और संभवतः बाबर ने एक छोटी सी इमारत भी बनवाई थी, परंतु बहुत-कुछ वह बियाबान ही था।

सीकरी गांव का भाग्य खुल गया। वहीं अकबर अपनी नई राजधानी का निर्माण करने लगा। आगरा में यमुना तट पर उसने सुदृढ़ किलेबंदी कर रखी थी। राजस्थान से आक्रमण का प्रायः भय भी नहीं था। सीकरी में सामान्य शहरपनाह के भीतर एक टेकरी पर नए नगर का निर्माण हुआ। उसके बीचोंबीच अकबर के अपने महल थे। कहते हैं गुजरात विजय के उपलक्ष में उसने इसका नाम फतहपुर रखा। यह नाम उसके सिक्कों पर भी मिलता है।

सीकरी के निर्माण के पहले ही अकबर ने एक नई स्थापत्य शैली चलाई थी। जैसे उसके जीवन के अन्य पक्षों में भारतीयता की छाप थी, उसी प्रकार उसकी इमारतों में। वस्तुतः अकबर काल से ही मुगल वास्तुकला का आविर्भाव होता है। इस पर ग्वालियर के मान तोमर के महलों की स्पष्ट छाप है। विशेष रूप से आगरा और सीकरी में जोधा-बाई के महल का नक्शा बिलकुल भारतीय घरों के नमूने पर है। इसमें बीच में आंगन है, और चारों ओर बरामदे या कमरे हैं। खंभे भी आयताकार, तथा भारी-भरकम हैं और उन पर बृहदाकार घोड़िए हैं। सारी सतह पर बहुत बारीक काम खुदा हुआ है। अकबर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की ये सभी इमारतें लाल पत्थर की हैं, जो पठान सुलतानों के काल से ही दिल्ली की इमारतों में प्रयुक्त होता था। विशेष रूप से शेरशाह के समय से लाल पत्थर की इमारतों का बहुत चलन हुआ। जान पड़ता है, अकबर शेरशाह-कालीन-संस्कृति से प्रभावित था। उसी प्रभाव में उसने लाल पत्थर की इमारतें बनवाईं। लाल पत्थर में संगमरमर की अपेक्षा कहीं अधिक हार्दिकता का बोध होता है। इसलिए अकबरी इमारतें बहुत अधिक प्रभावशाली हैं। सीकरी के वास्तु में विविधता है। उसमें प्रत्येक भवन दूसरे से भिन्न है।

ऐसा जान पड़ता है कि अकबर इन निर्माणों में स्वयं रुचि लेता था। हमें कई ऐसे चित्र मिलते हैं जिनमें अकबर इन निर्माणों की स्वयं देख-रेख कर रहा है। इसके अतिरिक्त कारीगरों के जीवन, वस्त्र आदि का भी इन चित्रों से पता चलता है। इनमें से बहुत से कारीगर हिंदू थे। उन्होंने अपने नाम नागरी लिपि में स्थान-स्थान पर खोद कर छोड़ दिए हैं। चित्रों से यह भी जान पड़ता है कि जहां इस प्रकार का इमारती काम लगता था, वहां खाने-पीने की दूकानें खुल जातीं कि मजदूर कारीगर छुट्टी के समय वहीं कुछ नाश्ता कर लें।

इसमें संदेह नहीं कि अकबर-कालीन प्रत्येक इमारत में बादशाह की रुचि की छाप है। उसके व्यक्तित्व की महानता भी इनमें प्रकट होती है। आगरा-सीकरी के अतिरिक्त अकबर ने अन्य स्थानों पर भी अनेक निर्माण-कार्य किए, जैसे इलाहाबाद का किला, लाहौर और चुनार के किले में कई भवन आदि। उसके समय में दिल्ली में हुमायूं का मकबरा बना, जिसके आधार पर शाहजहां काल में ताजमहल का निर्माण हुआ। अकबर ने स्वयं अपना मकबरा, सिकंदरा भी बनवाया था। इसकी निचली मंजिल ज्यों की त्यों है, परंतु शेष भाग जहांगीर ने बाद में बदलवा दिया। निचले भाग में बड़े लंबे-लंबे सूने गलियारे हैं, जिससे सृष्टि की विराटता का संकेत मिलता है। सीधे-सादे होने के कारण इनमें निराकार सत्ता का भी संकेत मिलता है।

परंतु अकबर-कालीन इमारतों के बचे उदाहरणों में से सीकरी सर्वोत्कृष्ट है और सौभाग्यवश उसका बहुत-कुछ अंश ज्यों का त्यों बचा भी है। ये इमारतें मुख्यतः दो पठारों पर स्थित हैं। पहली आम रास्ते पर है। इसमें केवल शाही मस्जिद है। बड़े ही भव्य आकार-प्रकार की है। इसका दक्षिणी दरवाजा फिर से तोड़कर बनवाया गया—कहते हैं, यह अकबर की गुजरात विजय (1573ई०) का प्रतीक था। यह 'बुलंद दरवाजा' के नाम से सुविख्यात है। वस्तुतः यह सबसे प्रभावशाली मुगल इमारत कही जा सकती है। यह सड़क से काफी ऊंचाई पर शुरू होती है, अतएव सड़क से तो 176 फुट ऊंचाई तक चली जाती है। इसके बीच में द्वार है जिसकी भव्य मेहराब समूचे वास्तु के अनुपात में बनी है परंतु वास्तविक द्वार बीच में है जो मस्जिद के अन्य द्वारों के नाप का है। मेहराब के अतिरिक्त इस वास्तु के अन्य भागों को तीन मंजिल में बांट दिया गया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सीकरी के निर्माण का निरीक्षण करता हुआ अकबर ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। इससे इसकी विशालता नहीं खटकती। पीछे का भाग थोड़ा नीचा है कि मस्जिद के अन्य भागों में खप जाए। वस्तुतः इन्हीं भिन्न-भिन्न अनुपातों का एक ही स्थान पर बड़े आकर्षक और सुसंयोजित ढंग से उपयोग करने से यह वास्तु इतना सुंदर बन सका।

मस्जिद के ही प्रांगण में शेख सलीम चिश्ती एवं उनके वंशजों की कब्रें और मकबरे हैं। इनमें सर्वप्रमुख स्वयं शेख सलीम का मकबरा है। वर्तमान स्वरूप में यह सफेद संगमरमर का बना हुआ है। इस प्रकार सारी सीकरी में एक यही इमारत संगमरमर की है, अन्यथा शेष सभी लाल पत्थर की। ऐसा जान पड़ता है कि जहांगीर ने इसे नए सिरे से बनवाया। अब यह उस लाल वातावरण में और भी खिलती है। जहांगीरी वास्तु-शैली के अनुसार इसमें सुबुकपन है और इसके अलंकरण भी अधिक रूमानी हैं।

सीकरी के दूसरे भाग में महल हैं। दीवान-ए-आम सबसे बाहरी ओर है। उसके भीतरी भाग में विशाल प्रांगण में अन्य महल बने। इनमें दीवान-ए-खास एक ओर है। इसमें बीच वाले कक्ष में एक स्तंभ है। उसके ऊपर ठीक बीचों-बीच तख्त रखने का स्थान है। कहते हैं, अकबर इसी पर आसीन होता और चारों कोनों पर चार भिन्न-भिन्न धर्मों के प्रतिनिधि अपने-अपने विचार व्यक्त करते और उनके वादविवाद में सम्राट अपनी धार्मिक शंकाओं का समाधान ढूंढ़ता।

विस्तृत प्रांगण में हौज़ के किनारे-किनारे अनेक महल हैं, अकबर की एक-एक बेगम के नाम पर। परंतु किसी के विषय में पक्का प्रमाण नहीं है। यहीं पचीसी या चौपड़ के घर फर्श पर खुदे हुए हैं। कहा जाता है कि इन पर मानवीय गोटों से अकबर चौपड़ खेलता था। इन सबके पीछे जोधाबाई का महल है जो हिंदू वास्तु की सीधी परंपरा में है। मानो, यहीं आकर अकबर की वास्तु कला ठिठक कर खड़ी रह गई।

अकबर ने इसे स्वप्न-लोक की भांति बसाया और फिर एकाएक 1585 में वह लाहौर चला गया। उसके बाद वह सीकरी कभी लौट कर नहीं आया। और सीकरी सदैव के लिए उपेक्षित पड़ी रह गई।

अकबर के युग में मन्दिरों का निर्माण

अकबर के वास्तु का प्रभाव सारे राजस्थान पर पड़ा। वहां भी बीकानेर, आमेर आदि में अकबरी प्रभाव में वास्तु बने। इसी समय अकबर की धार्मिक सहिष्णुता के फलस्वरूप हिन्दू राजाओं नें मन्दिरों का निर्माण भी प्रारम्भ कर दिया था।

इनमें मथुरा में गोविंद देव का मन्दिर सुविख्यात है। संयोगवश यह बचा भी रह गया। टोडरमल के दान से, काशी में नारायण भट्ट ने विश्वनाथ मन्दिर बनवाया। यह भी बड़ा भव्य मन्दिर रहा होगा, परन्तु औरंगजेब ने इसे नष्ट-भ्रष्ट कर मस्जिद का रूप

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
दे दिया। आमेर वंश के जगतसिंह ने जगत्शिरोमणि का मंदिर बनवाया जिसमें स्थानीय मंदिरों की परंपरा पूर्ण रूप से विद्यमान है, फिर भी उसका मंडप या जगमोहन अकबरी शैली का है। पटना के पास फतुआ नामक स्थान पर मानसिंह का बनवाया हुआ शिवालय अभी तक मौजूद है। इस प्रकार अकबरी इमारत कला का प्रभाव सारे देश पर पड़ा।

अंग्रेज यात्री का सीकरी वर्णन

संयोगवश राल्फ़ फ़िच नामक एक अंग्रेज सौदागर अकबर काल में सीकरी पहुंचा। उस समय अकबर सीकरी में ही था। उसने आगरा और सीकरी की एक झलक अपने वर्णन में दी है—"यह नगर आगरा से भी बढ़चढ़ कर है। यहीं बादशाह का दरबार लगता है। इस शहर में हिंदू-मुसलमानों की बस्ती है। बादशाह के पास एक हजार हाथी, तीस हजार घोड़े और चौदह सौ पालतू मृग हैं। इनके अतिरिक्त बहुत बड़ी संख्या में पालतू चीते, शेर, भैंसे, मुर्ग और बाज हैं, जिन्हें देखते ही बनता है।" ये सब जानवर भिन्न-भिन्न आमोद-प्रमोद के लिए, यथा जानवरों की लड़ाई के लिए, पाले जाते रहे होंगे। फ़िच सीकरी की सड़कों और गलियों से दुखी था। वे संभवत: वैसी ही रही होंगी जैसी बनारस, मथुरा या पुरानी दिल्ली के भीतरी भागों, अर्थात् मुगलकालीन अन्य शहरों में मिलती हैं। फ़िच के वर्णन से ज्ञात होता है कि अकबर के दरबार को लोग "दर्शन" कहते थे। हम आगे देखेंगे कि अकबरी दीन-ए-इलाही के मानने वाले दर्शनिया कहलाते थे। फ़िच आगे कहता है—आगरा और सीकरी दोनों ही बहुत बड़े नगर हैं। दोनों की जनसंख्या अच्छी है, दोनों ही लंदन से बड़े हैं। आगरा और सीकरी के बीच बारह कोस का फासला है। पर सारे रास्ते बाजार ही बाजार हैं जिनमें भांति-भांति के पदार्थ और भोजन मिलते हैं—मानो कोई एक ही शहर हो।

रास्ते में बहलियां चलती रहती हैं। इनमें नाटे बैल जुते होते हैं। वे घोड़े की चाल से चलते हैं। इन बहलियों पर रेशमी या बहुत ऊंचे किस्म के अन्य कपड़ों के पर्दे लगे होते हैं। इन पर दो-तीन लोग सवार हो सकते हैं।

सीकरी भारतीय और ईरानी व्यापारियों का प्रसिद्ध केन्द्र है। बाजार में तरह-तरह के रेशमी और अन्य प्रकार के वस्त्र, रत्न यथा माणिक, हीरे और मोती मिलते हैं। लौटते समय फ़िच नमक, अफीम, हींग, सीसा, कालीन आदि व्यापार के लिए इंग्लैंड ले गया। इस सामानों को वह नाव में भरकर यमुना से चला फिर बंगाल के रास्ते इंग्लैंड पहुंचा।

गुजरात पर विजय

उधर अकबर अजमेर से लौटते हुए लाहौर की ओर रवाना हुआ। उसने मारवाड़ का रास्ता चुना। जब वह नागौर में था तो जोधपुर और बीकानेर के राजाओं ने आकर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधीनता स्वीकार की। इससे अकबर का राजस्थान के मरु भाग पर भी अधिकार हो गया। बीकानेर घराने की एक कन्या और जैसलमेर के रावल की कन्या से उसने नागौर में रहते हुए ही विवाह किया। मालवा का सुलतान बाज़ बहादुर जो अब तक इधर-उधर भटक रहा था. अब निराश हो चुका था। वह भी अकबर के दरबार में हाजिर हुआ। यह संगीत का बहुत बड़ा आचार्य था। उसने अपना शेष जीवन संगीत-साधना में लगाया।

इन वर्षों में अकबर के सामने गुजरात की समस्या बनी रही। वहां नाम को तो पुराने सुलतान वंश का मुज़फ्फर तृतीय गद्दी पर था, परंतु वस्तुतः तैमूरी वंश के कुछ मिर्जा (राजकुमार) वर्तमान पश्चिमी उत्तर प्रदेश से भाग कर वहां पहुंच गए थे। वे वहां की राजनीति में अशांति बनाए हुए थे। मुज़फ्फर बहुत कुछ उनके हाथों का खिलौना था। वहां के आपसी झगड़े का अकबर ने लाभ उठाया और उसे एक दल की सहानुभूति भी प्राप्त थी। गुजरात के कुछ भाग पर मुगलों का अधिकार हुमायूं काल में हो गया था, परंतु शीघ्र यह प्रांत मुगलों के हाथ से निकल गया था। अब अकबर का ध्यान उस ओर गया।

इतना ही नहीं, गुजरात की बंदरगाहों से पश्चिमी देशों के साथ व्यापार होता था। देश की आर्थिक समृद्धि के लिए, उस पर केन्द्र का अधिकार आवश्यक था फिर वहां पुर्तगाली अपना अड्डा जमा रहे थे। जो मुस्लिम यात्री हज करने जाते उन्हें वे सताते। वस्तुतः मुगलों की कोई समुद्री शक्ति न थी और अरब सागर पर एक प्रकार से पुर्तगाली और अरब लुटेरों का साम्राज्य था। मुगल राजवंश के लोगों तक को उनकी दया पर निर्भर रहना पड़ता। गुजरात-दक्खन पर यदि मुगलों का अधिकार होता, तो भी उनसे कुछ निपटना संभव था।

अकबर ने राजस्थान के रास्तों को राणा प्रताप के छापामार हमलों से साफ रखने के लिए बीकानेर के राजा राय सिंह को जोधपुर में नियुक्त किया और वह गुजरात चल पड़ा। क्रमशः उसने वहां के सभी महत्वपूर्ण किलों पर अधिकार कर लिया और 1572 में उसे अहमदाबाद भी प्राप्त हो गया। एक साल के भीतर-भीतर गुजरात के शेष भाग भी मुगल साम्राज्य में आ गए। कहते हैं, गुजरात के इस अभियान में बादशाह के साथ चित्रकार भी थे।

गुजरात अभियान में अकबर ने एक स्थल पर फिर जोखिम मोल ली : एक बार विद्रोहियों का पीछा करते-करते जब वह माही नदी के किनारे पहुंचा तो सूर्यास्त हो रहा था। बड़ी संख्या में विद्रोही नदी के उस पार थे। शाही सेना पूरे चौबीस घंटे से बराबर बढ़ती चली आ रही थी। सभी थककर चूर थे। लोगों ने सलाह दी कि रात के समय नदी पार करना उचित न होगा। उसमें बेहद खतरा था, क्योंकि दूसरी ओर शत्रु की बड़ी सेना थी। पर अकबर ने यही निश्चय किया कि इस समय शत्रु तैयार न होगा, अतः यही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फतेहपुर सीकरी के बाहर बाजार का दृश्य ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ठीक अवसर है। निदान उसने रात में ही चुने हुए दो सौ सवारों को साथ ले माही नदी पार कर ली। विद्रोहियों का नेता तैमूरी वंश का इब्राहीम मिर्जा था। वह जब तक सामने निकल कर आए तब तक अकबर अपने साथियों को लेकर नदी वाले फाटक से शहर में घुस चुका था। किंतु मिर्जा के सैनिकों ने शाही टुकड़ी को घेर लिया था। स्वयं अकबर पर तीन घुड़सवारों ने आक्रमण किया। यदि मानसिंह साथ न होता तो संभवतः अकबर की जान न बचती। पर थोड़ी देर बाद पासा पलट गया और मिर्जा की सेना भाग खड़ी हुई। मिर्जा किसी प्रकार पाटन में जाकर छिप गया। अकबर ने इस विजय की खुशी में राजा भगवान दास को नक्कारा प्रदान किया। इसके पहले किसी हिंदू को नक्कारा नहीं मिला था। नक्कारा एक बहुत बड़ी डुग्गी होती है जिसे यात्रा अथवा युद्ध के समय राजा बजवाते थे। मुगल सम्राट यह अधिकार विशिष्ट मनसबदारों को देते कि उनके कूच के समय नक्कारा बजे। कभी-कभी किसी बड़े अपराध के फलस्वरूप यह अधिकार छीन भी लिया जाता।

दूसरे, मिर्जा मुजफ्फर हुसैन के हाथ में सूरत था। उस समय सूरत एक बड़ा बंदरगाह था और वहां यूरोपीयों की बस्ती थी। उस समय के जहाज ताप्ती नदी में सूरत तक सुविधा से आते जाते थे। इन यूरोपीय व्यापारियों के पास ज्यादा अच्छे किस्म की तोप-बंदूक होतीं और उनकी छोटी सेना बड़ी अनुशासनपूर्ण, अतः कारगार होती। यूरोपीय व्यापारियों ने उसी समय से भारतीय राजनीति में एक के विरुद्ध दूसरे की सहायता करने की नीति अख्तियार कर ली थी। इसी से उनका आगे चल कर प्रभुत्व बढ़ा। निदान, मिर्जा ने पुर्तगालियों को अपनी सहायता के लिए बुला रखा था। परंतु पुर्तगालियों ने शाही फौज को सामने देख, बड़ी चतुराई से अपना पिंड छुड़ा लिया। इसी गड़बड़ी में मुज़फ्फर हुसैन मिर्जा पुर्तगाली नाव से ताप्ती नदी में गिर कर बह चला। इस दृश्य का भी सुंदर चित्रण अकबरनामे की एक सचित्र प्रति में मिला है।

इसी प्रसंग में ही एक और मनोरंजक घटना हुई। इसका भी चित्र अकबरनामे की उक्त प्रति में है। अबुल फज़ल ने इसका इस प्रकार वर्णन किया है—

अकबर की सनक

एक रात अकबर अपने निकटवर्तियों के साथ शराब पी रहा था। सुरापान मुगलों में वंशगत था, राजपूतों में भी इसका खूब प्रचलन था। संयोगवश भारतीय वीरों की दिलेरी का प्रसंग चल पड़ा। किसी ने कहा राजपूत ऐसे वीर होते हैं कि आमने-सामने दोमुहे भाले के दोनों छोर-पर दो राजपूत गिर कर साथ-साथ प्राण दे देते हैं। प्रतिद्वंद्वियों के जान देने की अन्य कहानियां भी चल पड़ीं। अकबर के लिए मानो यह चुनौती थी। पर वहां उसका कौन प्रतिद्वंद्वी था! बस उसने दीवार में अपनी तलवार इस प्रकार खोंस दी कि उसका फल बाहर की ओर निकला हुआ था। अब अकबर अपनी तलवार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर ही कूद कर जान देने के लिए आमादा हो गया। इस प्रकार अकबर यह दिखला देना चाहता था कि मुगलों में भी प्राण देने की बहादुरी है। उसे रोकने की किसी और की हिम्मत न पड़ी। पर, अबुल फज़ल के शब्दों में 'स्वामिभक्त मानसिंह' ने बढ़कर तलवार को ऐसी ठोकर मारी कि वह छटक कर दूर जा गिरी। इसमें अकबर की एक उंगली कट गई।

इस पर अकबर बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने मानसिंह को उठाकर पटक दिया। फिर वह मानसिंह का गला घोंटने लगा–– ऐसा जान पड़ा कि वह मानसिंह के प्राण ही ले लेगा। मानसिंह को छुड़ाने की और किसी की हिम्मत न पड़ी। परंतु वहां सैयद मुजफ्फर नामक एक मनसबदार था। उसने अकबर की कटी हुई उंगली पकड़ ली और उसे मरोड़ना शुरू किया। इससे अकबर को पीड़ा हुई और मानसिंह की पकड़ ढीली पड़ गई। अकबर की उंगली से खून बह चला। बात आई गई हो गई। अकबर ने सारी स्थिति समझ ली और मानसिंह या सैयद मुजफ्फर को इस "उद्दंडता" के लिए कोई दंड न दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

3

अकबर सदा से जिज्ञासु था। सूरत में उसने पुर्तगालियों को बुलवाया। अबुल फ़ज़ल ने उस भेंट का हवाला दिया है। उससे ज्ञात होता है कि मुगल इन विदेशियों को नितांत जंगली मानते थे। फिर भी अकबर ने उनसे सौहार्दपूर्ण बातचीत की और पुर्तगाल तथा यूरोप के संबंध में बहुत जानकारी प्राप्त की। प्रायः इसी समय से मुगल दरबार में यूरोपीय कला-कौशल की चीज़ें आने लगी थीं और उनकी बड़ी कद्र होती। यूरोपीय चित्रों को देखने से मुगल शैली पर भी उनका प्रभाव पड़ा। फिर भी मुगल राजनीतिज्ञों ने इन यूरोपियों को ठीक-ठीक न समझा, न उनका प्रतिकार किया अन्यथा वे यहां जड़ न जमा पाते——उन्हें मुगल निरा असभ्य और बर्बर मानते रहे, उनके नए कला-कौशल, समुद्री विद्या और लड़ाई के तरीके से सीखने की कोशिश न की। पुर्तगालियों ने अकबर को अनेक बहुमूल्य सामान भेंट किए।

हम ऊपर देख चुके हैं कि हज यात्रियों की सुरक्षा के लिए मुगल पुर्तगालियों के भरोसे थे। अकबर ने उनके राज्यपाल से संधि कर ली।

एक ओर तो अकबर यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान को पहचानने का प्रयत्न कर रहा था, दूसरी ओर सूरत में पारसी धर्म के पुरोहित दस्तूर माह्यार जी राणा से ज़रथुस्त्र धर्म के सिद्धान्तों का मनन किया। वह 'ज्ञान' का प्रकाश पाने लिए तड़फड़ा रहा था।

अकबर लौटकर तो आया परंतु एक ही साल बीता था कि पुनः वहां विद्रोह उठ खड़ा हुआ। एक 'मिर्ज़ा' दौलताबाद भाग गया था, वहां से लौटकर फिर उसने गुजरात में विद्रोहियों को संगठित किया। बंगाल में अफगान विद्रोह कर रहे थे, इस परिस्थिति का लाभ उठाकर 'मिर्ज़ा' ने विद्रोह कर दिया। अकबर बंगाल अभियान की तैयारी कर रहा था कि गुजरात का समाचार मिला। अकबर में स्थिति को आंकने की अद्भुत क्षमता थी। उसने बंगाल की योजना स्थगित कर दी। फिर वह सेना लेकर धावा मारता अहमदाबाद पहुंच गया। इसमें उसे केवल ग्यारह दिन का समय लगा। आगरा से अहमदाबाद सेना इतने कम समय में पहुंचाना आश्चर्य ही था। जब 'मिर्ज़ा' को इसकी सूचना मिली तो उसने विश्वास ही न किया, क्योंकि गुप्तचरों ने बताया था कि अकबर सीकरी में है।

अहमदाबाद पहुंचने पर अकबर के सेनापतियों ने सलाह दी कि चुपके से आक्रमण किया जाए। परंतु अकबर को यह युक्ति न जंची। उसने दुंदुभी (नक्कारा) बजाने का हुक्म दिया। अकबर ने विद्रोहियों पर स्वयं आक्रमण किया। अनेक विद्रोही मारे गए, या

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
भाग निकले, कुछ अकबर से आ मिले। इस प्रकार गुजरात पर मुगलों का अधिकार हो गया। इसके बाद भी गुजरात में यदाकदा विद्रोह होते रहे, परन्तु अब वहां मुगल साम्राज्य इस प्रकार जम गया था कि उन्हें दबाने के लिए स्थानीय अधिकारी ही काफी थे।

बदायूनी और अबुल फ़ज़ल

संयोगवश अकबर जब गुजरात के धावे के लिए फतहपुर सीकरी से निकला उसके ठीक पहले दो विशिष्ट व्यक्ति उसके दरबार में आए। ये दोनों ही व्यक्ति अपने अपने क्षेत्र में अद्भुत थे पर दोनों की दिशाएं बिलकुल भिन्न थीं। इनमें एक तो स्वयं अबुल फ़ज़ल था, दूसरा अब्दुर कादिर बदायूनी था जो कट्टर मुसलमान तथा अरबी फारसी के साथ-साथ संस्कृत का प्रकांड पंडित था। इसी ने अकबर की आज्ञा से **महाभारत** आदि का सीधे संस्कृत से फारसी में अनुवाद किया। पर इसे अकबर की धार्मिक सहिष्णुता, व्यापक दृष्टिकोण और उदार विचार-धारा फूटे आंखों न सुहाती। उसने अकबर के समय का हाल, अपने ग्रंथ, **मुत्तखबुत्तवारीख़**, में लिखा है, जो गालियों से भरा पड़ा है। फिर भी वह बड़े काम का है, क्योंकि उसमें बदायूनी ने छिद्रान्वेषण करते समय बहुत से ऐसे तथ्य दिए हैं जो कहीं और नहीं मिलते। इनमें अकबर की महानता प्रकट होती है। बदायूनी का यह ग्रंथ इतना भयंकर है कि स्वभावतः वह बहुत दिनों तक इसे छिपाए रहा। फिर जहांगीर काल में, उसकी मृत्यु के बाद यह ग्रंथ प्रकट हुआ। वस्तुतः यह ग्रंथ अबुल फ़ज़ल के **आईन-ए-अकबरी** का पूरक है क्योंकि अबुल फ़ज़ल तो अकबर पर न्योछावर था। उसने अपने ग्रंथ में अकबर के व्यक्तित्व का आदर्श स्वरूप ही प्रकट किया। अबुल फ़ज़ल की भाषा भी बहुत लच्छेदार है, उसमें से तथ्य खोज कर निकालने पड़ते हैं।

पर अबुल फ़ज़ल अकबर का गुणगायक ही न था, वह अकबर का नए ज्ञान मार्ग में मार्गदर्शक भी था।

अबुल फ़ज़ल के पिता शेख़ मुबारक नागौरी अपने समय के बड़े चिंतक थे। वह मुस्लिम धर्मशास्त्र के विद्वान थे पर अत्यंत उदार विचार के भी थे। उनकी अपने समय के धर्मध्वजों से न पटी और उन्हें कई स्थान बदलने पड़े। अबुल फ़ज़ल इसी परंपरा में बढ़ा था। वह केवल 23 ही वर्ष का था जब वह 1573 में अकबर की सेवा में आया। अकबर के मन में सत्य की खोज के लिए उथल-पुथल मची थी। अबुल फ़ज़ल से उसे अपने प्रश्नों के समाधान मिले।

वस्तुतः मुस्लिम धर्म में परिवर्तन की मांग थी, परंतु समाज के कड़े नियंत्रण के कारण ऐसे परिवर्तन की गुंजाइश न थी। अलाउद्दीन खिलजी भी एक नया पंथ चलाना चाहता था, परंतु उसके सलाहकारों ने उसे रोका। मुस्लिम परंपरा में एक यह विश्वास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अकबर ने मानसिंह को धर दबोचा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था कि मुहम्मद साहब के एक हज़ार वर्ष बाद धर्म में बड़ा भारी परिवर्तन होगा और एक धार्मिक नेता (महदी) उत्पन्न होगा। हिंदू-मुस्लिम धर्म भी आपस में बहुत निकट आ रहे थे। कबीर में हम इसी प्रकार की कड़ी पाते हैं। सुल्तान काल में हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के अनेक महत्वपूर्ण उदाहरण मिलते हैं।

परंतु अकबर की विचारधारा एक भिन्न धरातल पर थी। हम देख चुके हैं कि बचपन से ही वह अन्वेषण करता रहता। कई बार मानो उसने अपने आपको ईश्वर के हाथ सौंप दिया था और सोचा कि यदि ईश्वर मेरी ज़िंदगी चाहता है, तो इस संकट से भी बचाएगा। पर ज्यों-ज्यों उसमें प्रौढ़ता आई, वह तात्विक चिंतन में डूबता गया। बदायूनी से हमें ज्ञात होता है कि पहले तो उसने मुस्लिम शास्त्र को समझने की चेष्टा की। हर शाम साम्राज्य के कामकाज से निवृत्त हो, वह बड़े से बड़े विद्वानों से मुस्लिम धर्म के सिद्धान्तों को सुनता। जहांगीर अपनी आत्मकथा में लिखता है कि अकबर की स्मरण-शक्ति अद्भुत थी और वह तत्काल जटिल से जटिल वस्तु की तह में पहुंच जाता था।

इन मुस्लिम आचार्यों के आपसी वाद-विवाद में अकबर को कट्टरता की गंध मिली। सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि एक पक्ष, दूसरे पक्ष की बात सुनने तक को तैयार न होता। अतः थोड़े ही समय बाद अकबर का मन इस प्रकार की विवाद-गोष्ठी से हट गया। इतना ही नहीं कई मुल्लाओं को उसने हटा भी दिया। परंतु इससे अकबर के मन में अन्य धर्मों और संप्रदायों की विचारधारा जानने की उत्सुकता जगी। राजपूतों के संपर्क से और उनकी कन्याओं से विवाह से अकबर हिंदू धर्म को आदर से देखता। अब वह हिंदू तथा अन्य धर्मों के तत्वों को जानना चाहता था। उसने हिंदू धर्म के कई महत्वपूर्ण ग्रंथों का, जिनमें रामायण, महाभारत भी हैं, फारसी में अनुवाद कराया। अबुल फ़ज़ल के अनुसार इनमें लिखी बातों को सत्य मानकर, बादशाह इनका आदर करता।

दूसरी ओर साम्राज्य की गतिविधियां भी चल रहीं थीं। बंगाल में शाही अफ़सर बीमार होकर मर रहे थे। विद्रोहियों का ज़ोर था। परंतु शाही सेनापतियों ने जाकर उस विद्रोह को शांत किया।

हल्दी घाटी की लड़ाई

उदय सिंह के पुत्र राणा प्रताप ने चित्तौड़ से हटकर गोगुंदा नामक स्थान में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थी। यह स्थान मेवाड़ के भीतरी भाग में, पहाड़ियों में है। वहां से राणा के सिपाही शाही फौज से छापामार युद्ध करते, और मुगल शासन को असंभव कर देते। बंगाल से निश्चित होते ही अकबर ने मेवाड़ की ओर ध्यान दिया। अकबर ने इस बार केवल अपने सेनापतियों को युद्ध के लिए भेजा था। जब यह सेना हल्दीघाटी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के मैदान में पहुंची तो राजपूतों ने इसे रोका। बदायूनी इस युद्ध में मौजूद था। वह लिखता है कि रास्ता तंग था, पहाड़ पर से राजपूत और भील तीर और पत्थर बरसाते। इस तरह बाण और गोलियां चलीं कि दोस्त-दुश्मन को पहचानना कठिन था। राणा की ओर से हकीम सूर अफ़गान ने ऐसा हल्ला बोला कि शाही फौज के राय लोन-करण कछवाहा का दल भाग खड़ा हुआ। कुछ देर तक तो ऐसा जान पड़ा कि राणा प्रताप ने बाजी मार ली। वह स्वयं घोड़े पर सवार होकर युद्ध संचालन कर रहा था और उसका युवराज करणसिंह बढ़-बढ़कर वार कर रहा था।

दोपहर होते-होते मानसिंह अपनी फौज लेकर आ पहुंचा। शोर हुआ कि बादशाह भी आया है, फिर तो शाही फौज ने दुगने उत्साह से धावा बोला और मेवाड़ी सेना के पैर उखड़ गए। इस युद्ध में मेवाड़ी फौज को गहरी क्षति उठानी पड़ी। राणा प्रताप भाग निकला पर उसके प्रिय घोड़े चेतक ने थकान के मारे थोड़ी दूर पर ही प्राण त्याग दिए। वहां आज भी चेतक की समाधि है। हल्दीघाटी में त्याग और बलिदान का इतिहास छिपा है, वह एक तीर्थ स्थल बन गया। राणा प्रताप और भीतरी जंगलों-पहाड़ों में चला गया। उसकी स्थिति और भी विषम हो गई। फिर भी उसने अपनी स्वतंत्रता न छोड़ी और सारे जीवन मुगलों से लड़ता रहा। बाद में स्थिति में थोड़ा सुधार होने पर उसने मेवाड़ के दक्षिणी भाग में बावंड नामक स्थान पर अपने महल बनाए। बाद में वहीं उसकी मृत्यु भी हुई। मेवाड़ का अधिकांश भाग मुगलों के हाथ में चला गया।

इस बीच में अन्य कई हिन्दू राजाओं ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी। बंगाल का विद्रोह भी सदैव के लिए समाप्त हो चुका था। विद्रोहियों के सरदार का सिर काटकर अकबर के सामने उपस्थित किया गया था। अब अकबर का ध्यान दक्खन के मुस्लिम सुलतानों की ओर गया। दक्खन में बहमनी साम्राज्य का अंत हो चुका था और उसके छोटे-छोटे भागों में नए-नए मुस्लिम राजवंश स्थापित हो चुके थे। अकबर ने उनके विरुद्ध अभियान आरंभ किया। इनमें मुगल राजनीति ऐसी उलझी कि औरंगजेब काल के अंत तक, प्रायः दो सौ तीस वर्षों तक, यह समस्या बनी रही। वस्तुतः औरंगजेब ने अपना इतना समय और इतनी शक्ति दक्षिण विजय में बरबाद की कि मुगल साम्राज्य ही लड़खड़ा उठा।

दक्खन के ये सुलतान काव्य-संगीत और चित्रों के प्रेमी थे। वे अपने क्षेत्र के सांस्कृतिक नेता थे। उनके दरबारों में दक्खनी हिंदी का विकास हो रहा था। बीजापुर का इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय तो कुछ धार्मिक प्रवृत्ति का भी था। उसने जगत गोसाईं की पदवी धारण की थी। इन सुलतानों को स्वभावतः वहां की जनता का समर्थन प्राप्त था।

पर इन सल्तनतों में आपस में ही द्वंद्व चला करता। कुछ ही समय पूर्व अहमदनगर के सुलतान ने बरार के सुलतान पर धावा कर दिया था। बरार अब समाप्त ही होने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाला था। अतः पहले अकबर ने खान देश के 'राजा' अली खां से संधि कर ली। अहमदनगर का रास्ता खानदेश से ही जाता था। अतः खानदेश की सहायता बिना अकबर का अहमदनगर पर चढ़ाई करना संभव न था।

टोडरमल के शासन सुधार

इधर, साम्राज्य विस्तार चल रहा था, उधर साम्राज्य को व्यवस्थित करने का भी काम जारी था। वस्तुतः शेरशाह ने इस ओर काफी सुधार किए थे। बाद में उसका सहायक टोडरमल अकबर की सेवा में आ गया। टोडरमल पहले तो मुज़फ्फर खां तुरबाती का सहायक था फिर वही इस विभाग का अध्यक्ष हो गया। वस्तुतः ये सुधार के कार्य टोडरमल के ही दिमाग की उपज थे। मुजफ्फर खां स्वयं इन योजनाओं से सहमत न था। बादशाह को टोडरमल की योग्यता भांपते देर न लगी। कुछ ही वर्ष बाद अकबर ने टोडरमल को वकील (प्रधान मंत्री) नियुक्त कर दिया।

सुलतान काल से यह व्यवस्था चली आ रही थी कि स्थानीय अधिकारी युद्ध काल में घोड़ों की व्यवस्था करते। इसलिए प्रत्येक शासक के जिम्मे घोड़ों की नियत संख्या होती। इसके लिए उन्हें राज्य की ओर से अनुदान या भूमि प्राप्त होती। ये स्थानीय शासक मुआयने के समय घोड़ों के एक ही झुंड को बारबार अलग-अलग स्थान पर दिखला देते। फिर यह भी निश्चित न रहता कि कौन से घोड़े शाही हैं, कौन से जनता के। अतः टोडरमल ने घोड़ों पर दाग लगाने की प्रथा चलाई। यह प्रथा पहले भी अपने देश में थी, क्योंकि चंद्रगुप्त मौर्य के प्रधान मंत्री कौटिल्य ने इसकी चर्चा की है, पर जान पड़ता है कि बीच में यह प्रथा बंद हो गई थी। अब सिपाहियों को दगे घोड़े राज्य की ओर से मिलते।

भूमि व्यवस्था भी बड़ी अस्तव्यस्त थी। लोदी काल से ही भूमि के बड़े-बड़े भाग अफ़गानों के कब्ज़े में थे। ये अफ़गान मनमाने ढंग से भूमि कर लगाते या फसल का तखमीना करते। इब्राहीम लोदी नें तो नगद कर लेना ही रोक दिया था। शेरशाह के समय स्थिति कुछ सुधरी थी। उसे कृषि कर उगाहने का स्वयं अनुभव था। शेरशाह ने भूमि की तीन किस्में निश्चित की थीं, कर की दर उनके अनुसार, अनुपात से होती। पर, यह अनुपात सारे देश के लिए एक समान था, अथवा अलग-अलग भागों में बदलता रहता, यह नहीं कहा जा सकता।

अकबर ने प्रारंभ में शेरशाह की चलाई हुई दरों के अनुसार ही खेती पर कर लगाया। उसी परंपरा में, अकबर काल में सारी वसूली नगदी में होती। शुरू-शुरू में साम्राज्य मुख्यतः पंजाब से बिहार तक फैला था, अतः सारे भाग के लिए एक दर थी। पर अकबर के दसवें राज्य वर्ष में स्थिति बदल गई थी, अब साम्राज्य में भिन्न-भिन्न प्रकार के क्षेत्र थे, अतः अलग-अलग प्रकार की दरें निश्चित की जातीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दो प्रकार की भूमि थी जिनमें राज्य की अपनी भूमि को **खालसा** कहते। दोनों के लिए एक ही प्रकार की दर निश्चित की गई। उपज की एक तिहाई ही वसूल की जाती परंतु प्रत्येक परगने के लिए अलग-अलग तखमीना होता। इसी स्थिति में टोडरमल के हाथ में राजस्व या माल के विभाग का प्रबंध आया। प्रत्येक परगने की उपज का अनुमान करना बड़ा कठिन था। फिर, प्रत्येक फसल का मूल्य निर्धारण स्वयं बादशाह करता। इससे बड़ी असुविधा होती। शाही फरमान निकलने में बहुत समय लग जाता क्योंकि बादशाह तो धावे पर धावे मार रहा था। अतः टोडरमल के कहने से बीघे की दर से खेती की एक निश्चित मालगुजारी कर दी गई जो नगद जमा करनी पड़ती। यह मालगुजारी काश्त के अनुसार होती अर्थात् प्रति बीघे ज्वार, बाजरा, गेहूं, गन्ना आदि के अनुसार मालगुजारी की दर बदलती जाती। पर यदि किसी कारण से काश्त अच्छी न होती तो इस पर छूट मिलती। गंगा-यमुना-दोआबे में 1585 से 1590 तक बहुत अच्छी फसलें होती रहीं अतः अन्न का दाम बहुत गिर गया था। इस पर वहां मालगुजारी की दर घटा दी गई थी। दूसरी ओर, जब अकबर लाहौर में कई बरस रहा तो वहां जिन्सों के दाम बढ़ गए थे, तब मालगुजारी बढ़ा दी गई थी। परंतु 1598 में ज्यों ही अकबर वापस आगरा आया, फिर मालगुजारी घटाकर पूर्ववत कर दी गई। इस प्रकार शाही राजस्व विभाग बड़ी सतर्कता से काम करता था।

अकबर काल के प्रारंभ में शाही मंसबदारों को जागीरें मिलतीं। जागीरदार को कितना प्रत्येक वर्ष प्राप्त होगा, इसका राजस्व विभाग के पास तखमीना था। परंतु जागीर से कौन कितना वसूल करता, इसका क्या ठिकाना। अतएव जागीरदारी प्रथा बिलकुल बेकार हो गई थी। 1566 में एक बार फिर से तखमीना किया गया। परंतु इसमें गड़-बड़ियां रह ही जातीं। अतः टोडरमल की सलाह पर अकबर ने एक दूसरा ही तरीका अपनाया। अब जागीर पर रहने वाले मंसबदारों को साम्राज्य से सीधे नगद वेतन मिलता और मालगुजारी वसूलने का काम राजस्व विभाग ने स्वयं अपने हाथ में ले लिया। इसके लिए उसने एक-एक इकाई बनाई जिसमें प्रत्येक से एक वर्ष में एक-एक करोड़ दाम (ढाई लाख रुपया) प्राप्त होते। अतः इन्हें करोड़ी कहते। इसी से पुराने समाज में करोड़ीमल नाम प्रचलित हुआ जैसे आज कलक्टर सिंह या तहसीलदार राय आदि नाम होते हैं।

इस बीच कूत के अनुसार दर निश्चित करने का हिसाब तैयार होता रहा। दस वर्ष बाद वह पुनः लागू किया गया। संभवतः यही भारत का पुराना परंपरागत तरीका था। पहले आंकड़े गड़बड़ थे, अतः नकद मालगुजारी की व्यवस्था की गई थी। नकद मालगुजारी वाली प्रणाली में यह पाया गया कि अहलकारों ने बड़ी-बड़ी गड़बड़ियां की थीं। उन्हें सज़ा दी गई। परंतु इससे राजस्व बहुत कम हो गया था। इसके बाद राजस्व का काम ठीक-ठीक चलने लगा। 1596 में प्रान्तों से राजस्व उगाहने का काम स्थानीय जागीरदारों के हाथ से ले लिया गया। वहां दीवान नियुक्त किए गए जो सीधे राजस्व

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
विभाग के अंतर्गत थे। ये दीवान सीधे मालगुजारी वसूल कर शाही खजाने में जमा कर देते। इसी को दीवानी कहते थे जिसे 1765 में शाह आलम द्वितीय ने इलाहाबाद में ईस्ट इंडिया कम्पनी को सौंप दिया। इसी से आजकल चलने वाला वाक्यांश, दीवानी कानून, बना जिसका मूल अर्थ, माल विभाग संबंधी कानून है। अकबर के चलाए ये नियम कई पीढ़ी तक चलते रहे।

985 हिजरी (1577-78 ई०) में एक अन्य मार्के की घटना हुई। आजकल की भांति उस समय भी यह अंधविश्वास था कि धूमकेतु (पुच्छल तारा) के उदय होने से कोई न कोई अनिष्ट होता है। संयोगवश उस साल भी पुच्छल तारा निकला। लोगों के मन में तरह-तरह की आशंकाएं होने लगीं। प्रायः लोगों के मन में आता कि राजा की हानि होगी। उस समय तूरान से हमले की बड़ी अफवाह थी। संयोगवश यह तारा ईरान में भी दिखलाई पड़ा और उसी साल वहां के शाह इस्माइल की, उसकी बहन परीजान खातून ने हत्या कर दी। भारत में तब लोगों की जान में जान आई कि चलो अपने देश का संकट तो टला। यह वृत्तांत बदायूनी ने लिखा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

4

अकबर ने 1564 में जज़िया कर उठा लिया। शुरू में ईसाई और यहूदियों को मुस्लिम सलतनतों में रहने पर यह कर देना पड़ता था। परंतु बाद में जब मुस्लिम सलतनतें विश्व के अन्य भागों में भी फैलीं और अन्य धर्मों के लोग भी उन के साम्राज्य में आ गए तो इसका अर्थ यह लगाया गया कि मुस्लिम धर्म न मानने वाली प्रजा को जज़िया कर देना होगा। स्वभावतः मुस्लिम प्रजा इससे मुक्त रहती। अकबर अपनी प्रजा को समान दृष्टि से देखता अतः उसने गैर-मुस्लिमों पर से जज़िया कर उठा लिया था। यह परंपरा जहांगीर और शाहजहां काल तक चलती रही, औरंगजेब ने पुनः जज़िया कर जारी किया।

उधर अकबर की विचारधारा में बड़ी तेजी से परिवर्तन हो रहा था। मुस्लिम धर्म की चर्चा से जब उसे संतोष न हुआ तो उसने अन्य धर्मों की विशेषताओं को जानने का प्रयास किया। वह रात-रात भर चिंतन में व्यतीत कर देता। एक हिंदू साधु से तो वह रात्रि के समय ही तत्व-चर्चा करता। बदायूनी का कहना है कि देवा नामक इस साधु से बातचीत के लिए एक अनोखा उपाय निकाला गया था। अकबर के झरोखे से एक डोली लटका दी जाती और रात के समय उसी में बैठकर वह साधु सीधे झरोखे में खींच लिया जाता। बदायूनी इन सब बातों से बहुत चिढ़ता था।

अकबर और जैन मुनि

अकबर के दरबार में जैन भी थे, यह बदायूनी और अबुल फज़ल दोनों ही कहते हैं। दो प्रमुख जैन मुनि हीर विजय जी तथा उनके शिष्य विजयसेन सूरी उसके दरबार में आए। ये दोनों श्वेताम्बर जैन थे। इनमें हीर विजय जी सूरी को तो 1584 ई० में अकबर का फ़रमान प्राप्त हुआ कि पर्युषण पर्व में जीवहिंसा न हो। लोग जैनों के सम्मुख हिंसा न करें और मांस न खाएं। इनके अलावा अन्य जैन मुनि भी आए। परंतु इनमें कोई भी दिगंबर न थे। जैनों का जहांगीर के समय में भी बड़ा आदर था।

हीर विजय जी के प्रति अकबर की बड़ी श्रद्धा रही होगी। अबुल फज़ल ने लिखा है कि ये उच्चतम कोटि के धार्मिक व्यक्ति थे।

इनके प्रभाव से अकबर को जीव हिंसा के प्रति अरुचि हुई और उसने कई खास तिथियों पर अपने साम्राज्य में जीव हिंसा की मनाही कर दी। वह स्वयं मांस-भक्षण के विरुद्ध हो गया, परन्तु हकीमों ने कहा कि आपको जितना कठोर श्रम करना पड़ता है,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

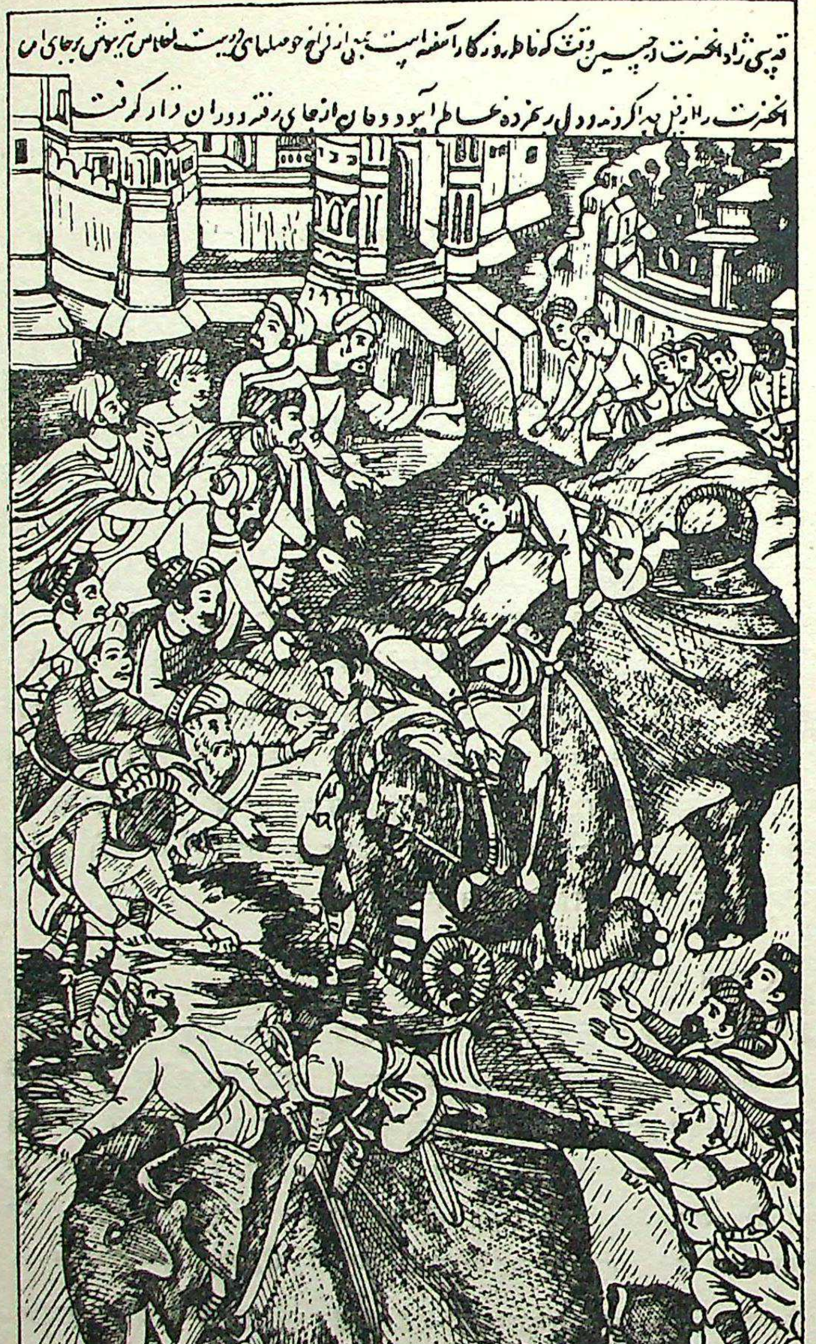

लकना हाथी पर अकबर का पैर फंसा ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसे देखते हुए आपको मांस खाना चाहिए। 1578 में जब वह पंजाब से लौट रहा था, तो उसने 30 जनवरी के दिन शादीवाल नामक स्थान पर, अपने मंसबदारों को मांस त्यागने की सलाह दी। बाद में उसने स्वयं प्रत्येक शुक्रवार को निरामिष भोजन करने का व्रत ले लिया। वस्तुतः अकबर सभी धर्मों के तत्वों पर विचार कर रहा था और जो-जो बातें उसे तर्कसंगत जान पड़तीं उनको वह अपने जीवन में अपना लेता था। यदि हम सम्राट् अशोक की शिक्षाओं को देखें तो उनमें भी दूसरे के धर्म को समझने की सलाह है। संभवतः भारतवर्ष में यह पुरानी परंपरा थी कि सम्राट सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु होते। अजातशत्रु, जो बुद्ध का समकालीन था, भी ऐसा ही राजा था।

इस बार पंजाब से लौटते समय एक और घटना हुई जिससे अकबर की मनःस्थिति का पता चलता है। 1567 में जब वह लाहौर से लौट रहा था तो एक बहुत बड़े शिकार का हांका हुआ था। इसका हम पहले वर्णन कर चुके हैं। इस बार 1579 में भेड़ा नामक स्थान पर फिर वैसे हांके का प्रबंध हुआ। फिर उसी प्रकार ज़ोर-शोर से शिकार चला। कितने ही जानवर मारे गए। ढोल बजाकर या अन्य प्रकार से शोर करके जानवरों को भीतर खदेड़ने वाले हंकवों ने अपना घेरा बहुत छोटा कर दिया था, जिससे कि सभी जानवर घिर गए थे। पर सहसा अकबर ने आज्ञा दी कि शिकार बंद। संयोग से बदायूनी ने उसकी मानसिक स्थिति का थोड़ा-सा वर्णन किया है :

"सम्राट को एक विलक्षण प्रकार का ईश्वरीय आनंद मिला और ऐसा अनुभव हुआ कि ईश्वर के प्रति बड़ा आकर्षण हो रहा है। उसकी चाल-ढाल में एक विचित्र परिवर्तन हो उठा—यह कैसा था, इसका ठीक-ठीक वर्णन नहीं किया जा सकता। वह अनुभव क्या था, इसे ईश्वर ही जान सकता है। बस तत्काल ही उसने शिकार रोक देने की आज्ञा दी।"

अबुल फज़ल के शब्दों में तो सम्राट साम्राज्य या जीवन तक त्यागने को तैयार हो गया था, "उसने इस हलचल को छोड़ना चाहा, या यह कहिए कि उसने इस शान-शौकत के जीवन से अपना दामन ही उठाना चाहा। उसे परमानन्द प्राप्त हुआ। उसे वह अनुभव हुआ जो बड़े-बड़े सूफियों को भी नहीं होता ... ।" अबुल फज़ल के विचार से अकबर को ईश्वर का अदृश्य साक्षात्कार हुआ।

धर्म सुधार की लहर

उस जमाने में ऐसी धारणा थी कि मुहम्मद साहब के एक हजार वर्ष बाद मुस्लिम धर्म में एक क्रांति होगी। वह एक हजारवां वर्ष अकबर के समय में 1592 में पड़ा। फिर भी बहुत पहले से ही इस परिवर्तन की झलक दीखने लगती है। बादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने भी ऐसे सुधार करने चाहे थे, परंतु उसके शुभचिंतकों ने उसे रोक दिया क्योंकि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समाज इस परिवर्तन को स्वीकार करने के लिए तैयार न था। फिर भी मुस्लिम समाज में ऐसे-ऐसे कितने ही सुधारवादी नेता एक न एक रूप में प्रकट होते गए। उनकी आवाज़ रूढ़ि को तोड़ न सकी, यह अलग बात है। मुस्लिम धर्म ने भी भारतीयता का बाना कुछ-कुछ पहन लिया था, इस समाज के जीवन में अनेक भारतीय मान्यताएं समा गई थीं। जहां तक संभव था हिंदू-मुस्लिम धर्म का समन्वय भी हो चुका था। कबीर, नानक आदि संतों ने हिंदू-मुस्लिम धर्मों में मेल का मार्ग दिखलाया था। कबीर तो धार्मिक कट्टरता के बहुत बड़े शत्रु थे। उन्होंने हिंदू और मुस्लिम धार्मिक कट्टरता की खिल्ली उड़ाई थी, सीधे-सादे जीवन पर जोर दिया था। इन संतों के प्रभाव से कई पंथ चले, जिनमें उपासना या पूजा का तरीका सीधा-सादा था।

हिज्री सन् की दसवीं शती चल रही थी। इस समय इस्लाम जगत् में मुहम्मद महदी नामक व्यक्तित्व की प्रतिक्षा थी, जो इस्लाम के रक्षक होंगे। यद्यपि उस काल में अपने आपको महदी कहने की किसी ने गुस्ताखी नहीं की, कई लोगों ने स्वयं को संसार का रक्षक माना। इनमें जौनपुर के मीर सैयद मुहम्मद भी थे। कहते हैं उन्हें दिव्य शक्ति प्राप्त थी, उनके शिष्यों की संख्या बड़ी थी। जब जौनपुर में उन्हें लोगों ने तंग किया तो वे गुजरात चले गए, वहां के सुलतान महमूद प्रथम उनके शिष्य हो गए। मृत्यु के बाद तो उनके शिष्य कहते कि मीर, महदी ही थे।

भरतपुर के निकट बयाणा में शेख अली, अपने को महदी कहते। पर बाद में वे नियाजी संप्रदाय में हो गए। इस संप्रदाय के लोगों ने एक समाजवादी व्यवस्था कर ली थी। उनकी सामूहिक संपत्ति होती। भिक्षावृत्ति से जो आमदनी होती उसे वे आपस में बांट लेते। ये बढ़ते-बढ़ते इतने प्रबल हो गए कि बयाणा का शासन प्रबंध चलाना दूभर हो गया। इस समय इस्लाम शाह सूर दिल्ली का बादशाह था। इसने इस संप्रदाय के धर्मगुरु, अलाई को बुलवाया। आशय तो यह था कि वह अलाई को प्राणदण्ड देगा, परंतु वह स्वयं ही उसका प्रशंसक बन गया।

इसी संप्रदाय में शेख मुबारक दीक्षित हुए। परंतु मखदूम-उल्-मुल्क उनके शत्रु हो गए, और उन्होंने शेख की सारी माफ़ी ज़मीन ही ज़ब्त करा दी। इस्लाम शाह ने भी उनके नेता को पिटवाया और नियाज़ी आंदोलन दब गया। अकबर काल में भी इस महदवी आंदोलन के विरुद्ध राज-रोष था। एक बार तो अकबर के भय से शेख मुबारक गुजरात भाग गए थे।

शेख मुबारक के पूर्वज राजस्थान के नागौर में आकर बस गए थे। इस कारण यह वंश नागौरी कहलाता था। यह वंश अपने को पूर्णतः हिंदुस्तानी मानता। शेख मुबारक के पुत्र अबुल फज़ल ने स्वयं अपने को तथा अपने वंश वालों को सदैव हिंदुस्तानी कहा है। शेख मुबारक इस्लाम के तत्वों के बहुत बड़े पंडित हुए। कुछ समय तक ये गुरु की खोज

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अबुल फ़ज़ल अकबरनामा की प्रति भेंट करते हुए ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते रहे। इनमें अहमदाबाद के शेख अबुल फज़ल भी थे, इन्हीं के नाम पर शेख मुबारक ने अपने प्रसिद्ध पुत्र का भी नामकरण किया।

अबुल फ़ज़ल और फ़ैज़ी

अकबर जब चित्तौड़ पर चढ़ आया था तो उसने शेख मुबारक के पुत्र अब्दुल फ़ैज़ का नाम सुना। ये फ़ैज़ी के नाम से कविता करते थे और बीस वर्ष की अवस्था में ही लोक-प्रसिद्ध हो चुके थे। फ़ैज़ी अकबर से चित्तौड़ के घेरे में ही मिला।

अबुल फ़ज़ल, फ़ैज़ी का छोटा भाई था। धर्म के नाम पर उसके पिता को जो सताया गया इससे उसे सहिष्णुता की दीक्षा मिली। किशोरावस्था में ही वह मुस्लिम शास्त्रों का अगाध पंडित हो गया। कहते हैं एक बार एक अज्ञात इस्फहानी ग्रंथ आया। उसके पत्रों के आधे-आधे भाग जल गए थे। अबुल फ़ज़ल ने बड़े परिश्रम से जले हुए अंशों को पूरा किया। फिर संयोगवश एक पूरी प्रति भी मिल गई। इसे देखने से पता चला कि अबुल फ़ज़ल ने जो हिस्सा पूरा किया था वह मूल ग्रंथ से बहुत मिलता-जुलता था।

अबुल फ़ज़ल फकीर का जीवन बिताना चाहता था। फ़ैज़ी शाही दरबार में गया, तब अबुल फ़ज़ल सत्रह वर्ष का ही था। 1574 में अबुल फ़ज़ल भी दरबार में आया। तब तक वहां फ़ैज़ी का सिक्का जम चुका था। अबुल फ़ज़ल का भी यथोचित सम्मान हुआ। फिर तो वह अकबर का धार्मिक मंत्री ही हो गया। दरबार में आने से पहले ही उसमें भिन्न-भिन्न संप्रदायों के गुरुओं से ज्ञान प्राप्त करने की प्यास थी।

अबुल फ़ज़ल स्वभाव से बड़ा ही नेक था। उसके कट्टर दुश्मन वदायूनी तक ने उसके नेक स्वभाव की तारीफ़ की है। कभी किसी ने उसे ज़ोर से बोलते नहीं सुना। उसने बहुत अधिक लिखा है, पर स्त्रियों के प्रति कहीं भी हलकी बात नहीं लिखी। अपने नौकरों के प्रति वह बड़ा उदार था। यदि किसी नौकर से अप्रसन्न हो जाता तो भी उसे अपने यहां से न निकालता। आगे चल कर उसके यहां सदाव्रत बंटता रहता जिसमें खिचड़ी भी बंटती।

अबुल फ़ज़ल सीकरी आ गया, पर उस समय अकबर बिहार-बंगाल विजय पर निकला था। अकबर के लौटने पर जामा मस्जिद सीकरी, में दोनों की भेंट हुई। अबुल फ़ज़ल ने बादशाह को कुरान के एक सूरा (अध्याय) पर अपनी टीका भेंट की। दरबार के रूढ़िवादी मुसलमान-मुल्ला इन दोनों भाइयों से चिढ़ते थे। अकबर हर गुरुवार की रात तत्व चिंतन करता और इस्लाम के पंडितों का वाद-विवाद सुनता। इन मुल्लाओं की कट्टरता से वह ऊब गया था। दूसरी ओर शिया संप्रदाय में उसे उदार दृष्टि दीखती। अकबर के राज्य के सद्र-ए-सुदूर (मुस्लिम धर्म गुरु) शेख अबुल नबी ने दो शियाओं को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राणदंड दिलवाया था। अकबर ने उससे पिंड छुड़ाने के लिए उसे हज करने भेज दिया। ऐसे कट्टर-पंथियों के बीच अबुल फ़ज़ल ने दरबार में प्रवेश किया।

धार्मिक एकता की ओर झुकाव

सम्राट होने के नाते अकबर धार्मिक तत्वों की तह में जाना अपना कर्तव्य समझता। एक बार वह फतहपुर सीकरी में प्रातःकाल, एकांत में शिला पर बैठा तो उसके मन में यह भावना आई कि अपनी प्रजा में भेद-भाव नहीं रखना चाहिए। दूसरी ओर इस्लाम के मुल्ला ग़ैर-मुसलमानों को सताने की सलाह देते। इनके वाद-विवाद इतने उग्र होने लगे कि बादशाह के सामने भी ये दरबारी तहज़ीब का ध्यान न रखते। इस सबसे अकबर के मन में सच्चाई की खोज की प्रवृत्ति और अधिक बढ़ी। स्वभावतः इसमें अबुल फ़ज़ल का भी हाथ था।

अलाउद्दीन खिलजी ने कोशिश की थी कि हर बात में कुरान शरीफ़ को प्रमाण मानने के बजाय मस्लाते-वक्त अर्थात् समय के अनुसार चला जाए। पर उसे हार माननी पड़ी। अबुल फ़ज़ल ने भी एक रात यह प्रश्न उठाया तो मुल्लाओं में मानो तूफान आ गया, उनकी समझ में इससे इस्लाम पर ही कुठाराघात होता।

अबुल फ़ज़ल को बादशाह से मिले चार वर्ष बीत चुके थे। वह बादशाह के काफ़ी निकट आ चुका था। इस बीच अकबर को यह निश्चय हो चुका था कि सभी धर्मों में साधु-पंडित हैं अतः इस्लाम भी, और धर्मों के समान है।

अकबर के इस दृष्टिकोण के आगे मुल्लाओं को झुकना पड़ा और आगे चलकर 1579 में उन्होंने इस दस्तावेज़ पर दस्तखत कर दिए जो उनके प्रतिद्वन्द्वी शेख मुबारक और अबुल फज़ल ने तैयार किया था। इसके अनुसार बादशाह राजकीय ही नहीं, धार्मिक मामलों में भी सर्वोच्च माना गया। इस प्रकार सदरों-मुल्लाओं का प्रभाव अकबर काल में जाता रहा। इसके बाद बादशाह को "मुजाहिद" का दर्जा मिल गया, अर्थात् धार्मिक मामलों में भी बादशाह का "शासन" सर्वोपरि हो गया।

अकबरनामा में अबुल फ़ज़ल लिखता है कि इस घोषणा के बाद दरबार में सभी धर्मों और सम्प्रदायों के विद्वान भर गए। सभी की धार्मिक मान्यताओं पर विचार होता। यदि उनमें कोई कमजोरी होती तो उसे प्रकट किया जाता। धार्मिक सहिष्णुता (सुलह कुल) बरती जाती, इससे उलटी बुद्धि वाले और दुष्टों को जलन होती। अबुल फ़ज़ल ने अपने इन द्वेष करने वालों के लिए भी कड़े शब्द नहीं इस्तेमाल किए—इससे उसका बड़प्पन प्रकट होता है। परवर्ती इतिहासकारों ने लिखा है कि किसी ने अबुल फ़ज़ल के मुंह से गाली या कठोर वचन न सुना था।

हमने ऊपर देखा कि शेख मुबारक, अबुल फ़ज़ल और फैज़ी की प्रेरणा से मुल्लाओं ने अकबर को ईश्वर का प्रतिनिधि (खलीफ़ा) स्वीकार किया। यह अकबर के **दीन-ए-**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इलाही की ओर पहला कदम था। इस धर्म में इस्लाम के प्रति विद्रोह था अतः दरबार में इस्लामी प्रार्थना बंद कर दी गई।

हम ऊपर देख चुके हैं कि अकबर का धार्मिक क्षितिज बहुत व्यापक था। उसे संकीर्णता और रूढ़ि से चिढ़ थी। इस कारण वह सभी धर्मों की बातें जानने की कोशिश करता। वह विभिन्न धर्मों के विद्वानों से पूछता कि संसार की सृष्टि कैसे हुई। एक बार उसने यह जानना चाहा कि मनुष्य की कोई प्राकृतिक भाषा है या नहीं। उसने सोचा कि कुछ नवजात शिशुओं को मनुष्य की बोली से बचाकर रखा जाए, तो संभव है वे दैवी भाषा में बोलें। इन शिशुओं का पालन-पोषण तो धाएं करतीं परंतु उनसे कोई बात न करता। जब ये शिशु बड़े हुए तो वे गूंगे हो गए। इससे अकबर स्वभावतः बहुत निराश हुआ।

1582 में एक दिन प्रमुख मनसबदारों के साथ अकबर फतहपुर सीकरी के उत्तर में, झील के किनारे गंजीफा आदि खेल रहा था। सहसा झील का बांध फट गया। सौभाग्यवश एक के सिवा सभी लोग बच गए। अकबर ने इसे ईश्वर की कृपा माना। उसने उसी दिन से गंजीफा-शतरंज आदि खेलना छोड़ दिया।

सब धर्मों में अच्छाई

अकबर सभी धर्मों के तत्व जानने का प्रयत्न कर रहा था। उसने कई बार ईसाई धर्मगुरुओं को गोआ से बुलवाया। प्रत्येक बार ये पादरी इसी आशा में आए कि बादशाह ईसाई धर्म स्वीकार कर लेगा और इससे उनके धर्म-प्रचार में बहुत सुविधा होगी। बादशाह इन धर्मगुरुओं की सच्चाई, निर्भीकता आदि से बहुत प्रभावित भी हुआ था। उसने अपने पुत्र मुराद को इनकी शिक्षा में भी कर दिया, परन्तु ये धर्मगुरु उसकी शंकाओं का समाधान न कर सके। दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता का तो उनमें पूर्ण अभाव था। इसके अलावा अकबर के सामने एक और समस्या थी जिसका समाधान उसे ईसाई धर्म में न मिला। उस ज़माने में हिंदू और मुसलमान दोनों में कई शादियां करने की प्रथा थी। अकबर के भी कई बेगमें थीं। ईसाई धर्म में केवल एक पत्नी की प्रथा थी। अकबर को यह बात न जंची। इसके पूर्व वह पारसी, हिन्दू, जैन आदि धर्मों के सिद्धान्तों को समझ चुका था। बदायूनी के अनुसार तो वह युवावस्था से हिंदुओं की भांति हवन करता। आईन-ए-अकबरी से ज्ञात होता है कि अकबर सौर और चंद्र दोनों ही तिथियों के अनुसार अपने जन्मदिन पर प्रति वर्ष तुलादान कराता। इसमें भिन्न-भिन्न पदार्थों का तुलादान होता, जो गरीबों को बांट दिए जाते। इसी प्रकार शाहजादों के भी तुलादान होते। यह क्रम पीढ़ियों तक चलता रहा। तुलादान की परंपरा हिंदुओं से ली गई थी।

वह विभिन्न धर्मों के आचार्यों की सम्मिलित बैठक कराता और विभिन्न धर्मों के मत-मतांतर पर विचार-विमर्श करता। उसे धार्मिक चमत्कारों से वितृष्णा थी। इस पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुस्लिम मुल्ला उससे चिढ़ते। कभी-कभी तो बहस बहुत बढ़ जाती और लोग एक दूसरे पर कटाक्ष करते, बुरा-भला तक कह डालते। अतः इन सभाओं से प्रायः कटुता ही बढ़ती और उसका उद्देश्य सफल न होता। अकबर को इन धर्माचार्यों के प्रति वितृष्णा ही होती। उदाहरण के लिए एक बार शेख़ कुतुबुद्दीन ने ईसाई पादरियों का चोग़ा पकड़कर कहा, "यहीं बादशाह के सामने अग्नि जलाई जाए। मैं भी उसमें से होकर चलता हूं, तुम भी चलो। इस प्रकार तुम्हारे धर्म की परीक्षा हो जाएगी।" बादशाह ने शेख़ को दरबार से निकाल कर सिंध भेज दिया। (बदायूनी)

दीन-ए-इलाही की शुरुआत

उसने यह पाया कि सभी धर्मों का एक ही उद्देश्य है। अतः उसने सर्व-धर्म-समन्वय अर्थात् सब धर्मों की अच्छी बातें लेने का मार्ग पकड़ा। इसी को उसने 'सुलह कुल' कहा। इस तरह सब धर्मों की अच्छी बातों को लेकर उसने दीन-ए-इलाही चलाया। इसमें इस्लाम का एकेश्वरवाद था, तो पारसी धर्म के अनुसार सूर्य और अग्नि उस ईश्वर के प्रकाश और तेज के रूप में पूजनीय थे। जब संध्या को दीपक जलता तो लोग अपने-अपने आसन से उठकर उसकी अभ्यर्थना करते। हिंदू और जैन धर्मों के अहिंसावाद की इस धर्म पर गहरी छाप थी। वर्ष के अनेक दिनों पर जीव-हत्या का निषेध था। लोग मांस खाने से परहेज़ करते, आदि।

बदायूनी लिखता है कि सूर्य के प्रति ऐसा आदर बीरबल (वीरवर) के प्रभाव से आया। इस सिद्धान्त के अनुसार सूर्य से ही सभी वस्तुएं पैदा होती हैं, अन्न आदि उसी के तेज से पकते हैं। राजाओं को वही तेज प्रदान करता है। अतः मुस्लिम धर्म के अनुसार पश्चिम की ओर मुंह करके प्रार्थना न करनी चाहिए, वरन् पूर्व की ओर करनी चाहिए क्योंकि यही सूर्योदय की दिशा है। ग्रहों के अनुसार बादशाह अपने जन्मोत्सव पर अलग-अलग रंग की पोशाक पहनता। इतना ही नहीं अपने राज्यारोहण की वर्षगांठ पर वह सूर्य और अग्नि को दंडवत करता।

वह युग धर्मगुरुओं का था। अतः इस पंथ के लिए भी धर्मगुरु की आवश्यकता थी—स्वभावतः इस आंदोलन का नेता होने के नाते अकबर ही उसका गुरु हुआ। अनेक इतिहासकारों ने इस पर बहुत कटाक्ष किया है और इसके अर्थ-अनर्थ किए हैं। पर ऐसे और भी उदाहरण दिए जा सकते हैं। अकबर-जहांगीर के ही समकालीन, बीजापुर के सुलतान, इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय भी अपने को **जगद् गोसाईं** कहते। वे भी रहस्यवादी थे। गुरु के प्रति भारतीय समाज में, विशेषतः उस युग में, अपार श्रद्धा थी, उनमें लोग अलौकिक गुण देखते, अथवा उन्हें ईश्वर का अंश मानते। अतः अबुल फज़ल ने जो इस पंथ '**दीन-ए-इलाही**' में दीक्षित था, अकबर के अनेक अलौकिक गुणों की चर्चा की है। उदाहरण के लिए अबुल फज़ल ने लिखा है कि अकबर के प्रसाद से एक व्यक्ति की, जिसने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपनी जीभ काट डाली थी, जीभ फिर से निकल आई। वस्तुतः लोक में गुरु के लिए ऐसी मान्यताएं चल पड़ी हों तो आश्चर्य नहीं। परन्तु स्वयं अकबर अपने को एक साधक मात्र मानता था। वह कहता कि भला मैं किसी का मार्ग दर्शन क्या करूंगा, क्योंकि मुझे मार्गदर्शक स्वयं चाहिए।

जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, इस धर्म का नाम **'दीन-ए-इलाही'** रखा गया। इस धर्म का सिद्धान्त था––'सुलह कुल' अर्थात सभी धर्मों का समन्वय। इसका आदर्श वाक्य था––अल्लाहो-अकबर, अर्थात् ईश्वर ही सर्वश्रेष्ठ है। परन्तु इससे एक और अर्थ भी निकलता है अकबर ही अल्लाह (ईश्वर) है। यह अर्थ भी अभिप्रेत रहा हो तो आश्चर्य नहीं क्योंकि उस युग में गुरु को ईश्वर-तुल्य मानते थे। **'दीन-ए-इलाही'** के भक्त भी यदि अपने गुरु अकबर को ईश्वर-तुल्य मानते रहे हों तो आश्चर्य नहीं।

'दीन-ए-इलाही' में हिंदू और मुसलमान दोनों ही धर्मों के व्यक्ति लिए जाते। बादशाह की ओर से इस धर्म को स्वीकार करने का कोई दबाव न था। उसके कई प्रमुख हिंदू सरदारों ने अपना धर्म न छोड़ा था। कहा जाता है कि राजा टोडरमल एक बार कहीं जा रहे थे––उनके इष्टदेव की मूर्ति साथ रहती थी, परन्तु वह बीच में छूट गई थी। राजा टोडरमल ने तब तक अन्न ग्रहण न किया, जब तक उन्हें वह मूर्ति फिर से न मिल गई। इससे यह स्पष्ट होता है कि अकबर के सरदारों को अपने अपने धर्म के पालन की स्वतंत्रता थी।

इसी प्रकार राजा मानसिंह कछवाहा के विषय में एक मनोरंजक घटना बताई जाती है। बदायूनी का कथन है कि बादशाह ने उनसे दीन-ए-इलाही स्वीकार कर लेने का प्रस्ताव किया। मानसिंह ने उत्तर दिया कि मैं केवल दो ही धर्मों को जानता हूं––हिंदू और मुसलमान। मुझे इस्लाम कबूल करने में हिचक नहीं, परन्तु किसी अन्य धर्म को जो न हिंदू हो, न मुसलमान, मैं कैसे ग्रहण कर सकता हूं? मैं प्राण देने को तैयार हूं––मैं जान हथेली पर रखकर चला हूं––उसके लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं। पर मैं हिंदू हूं, यदि बादशाह चाहें तो मुसलमान बन सकता हूं, इसके अतिरिक्त मैं कोई धर्म स्वीकार नहीं कर सकता। बादशाह ने इस पर फिर जोर न दिया।

इससे यह स्पष्ट है कि दीन-ए-इलाही का प्रचार जोर-जबरदस्ती से न हुआ वरन् लोग खुले जी से उस पर विचार करते। कुछ महत्वपूर्ण व्यक्ति तो बादशाह के सामने ही डटकर उसका विरोध करते। दीन-ए-इलाही स्वीकार करने पर अपना जन्मजात धर्म––हिंदू या मुस्लिम धर्म त्यागना होता। इस बात की बाजाब्ता घोषणा करनी पड़ती। जान पड़ता है, राजा महेशदास (बीरबल) को छोड़, किसी विशिष्ट हिंदू ने इसे स्वीकार न किया। अतः मुख्यतः इसके मानने वाले मुस्लिम वर्ग से ही आए। संभवतः अकबर के समय में इसके हजार-दो-हजार अनुयायी हो गए थे। पर उसके बाद यह संप्रदाय न चला।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दीन-ए-इलाही के पीछे जो भावना थी, उसे जेसुइट ईसाई पादरी बारतोली ने बहुत अच्छी तरह व्यक्त किया है। सारांश में वह इस प्रकार है :

"अकबर जब आंतरिक झगड़ों से मुक्त हुआ तो उसका धर्म-सुधार की ओर ध्यान गया। उसने एक नए धर्म की स्थापना की। इसमें उसने पवित्र कुरान, ब्राह्मणों के धर्मशास्त्र और ईसा मसीह के उपदेशों का समन्वय किया। इस हेतु उसने एक सभा की। इसमें सभी धर्मों के आचार्यों को बुलाया, साथ ही, अपने मनसबदारों को भी बुलाया। केवल पादरी रुडोल्फो नहीं बुलाए गए, क्योंकि अकबर की धारणा थी कि वे धर्म-विरुद्ध मानकर इसे कभी स्वीकार न करेंगे।"

इस सभा के सम्मुख उसने 'दुष्टतापूर्ण' प्रस्ताव रखा (ध्यान देने की बात है कि सभी धर्मों के कट्टरपंथी अनुयायियों ने अकबर के उदारतापूर्ण दृष्टिकोण का विरोध किया) :

"किसी भी साम्राज्य के अन्तगत यह अनुचित है कि जनता अनेक धर्मों में विभाजित हो। इससे आपस में मतभेद उत्पन्न होता है। जितने धर्म उतने ही दल हैं। उनमें आपस में शत्रुता होती है। अतएव सभी धर्मों में समन्वय अपेक्षित है। परंतु इसे ऐसे ढंग से करना चाहिए कि एक होते हुए भी उनकी विशेषता बना रहे। इससे सभी धर्मों की अच्छाइयां बनी रहेंगी और दूसरे धर्मों की विशेषताएं भी आ जाएंगी। इससे ईश्वर के प्रति आदर बढ़ेगा, लोगों में शांति होगी और साम्राज्य की सुरक्षा भी बढ़ेगी।"

इतना कह कर अकबर चुप हो गया। उसने उपस्थित सभा से इस पर अपने विचार प्रकट करने को कहा। उपस्थित व्यक्तियों ने उसे स्वीकार किया। संभव है कि अनेक व्यक्तियों ने बादशाह के सामने शिष्टाचारवश हामी भर ली हो।

दीन-ए-इलाही का विधि-विधान

इस प्रकार 1582 में **तोहीद-ए-इलाही** (एकेश्वरवाद) **दीन-ए-इलाही** की स्थापना हुई। अकबर इस धर्म का प्रधान था। इसमें जब कोई व्यक्ति दीक्षित होता तो वह बादशाह के चरण में अपना सिर रखता। बादशाह अपना हाथ उसके ऊपर फैला देते और फिर से पगड़ी पहना देते। इसका अर्थ यह होता कि वह व्यक्ति सत्य मार्ग पर आ गया। फिर बादशाह उसे एक शस्त्र देते। यह शस्त्र क्या था, पता नहीं। संभवतः यह कोई गोल वस्तु थी, जिसे उस संप्रदाय के लोग अपनी पगड़ी में रखते। शस्त्र पर 'अल्लाहो अकबर' खुदा हुआ होता। इसके अतिरिक्त इस संप्रदाय के लोग अकबर का चित्र भी अपनी पगड़ी में पहनते।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दीन-ए-इलाही संप्रदाय के व्यक्ति जब आपस में मिलते तो इस प्रकार अभिवादन करते। पहला व्यक्ति कहता—**अल्ला-हो अकबर** तो दूसरा जवाब में कहता—**जल्ल जलालहू**। स्वभावतः इसमें जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर का नाम आ जाता है। 'अल्ला हो अकबर' वाक्यांश का अर्थ, ईश्वर सर्वश्रेष्ठ है अथवा अकबर ही ईश्वर हैं, हो सकता है। 'जल्ल जलालहू' का अर्थ है—महान है, ईश्वर का तेज। ये ही वाक्यांश उसके सिक्कों पर भी मिलते हैं।

इस संप्रदाय का प्रत्येक व्यक्ति अपने जन्मदिन पर भोज देता। वह इस अवसर पर भरपूर दान देता कि मृत्यु के बाद परलोक यात्रा ठीक-ठीक हो। साथ ही, मृत्यु-भोज के बदले, ये लोग अपने जीवन में ही इस प्रकार का भोज दे देते। इन लोगों को मांस खाना मना था। वे शिकार किए हुए जन्तु के पास न जा सकते। कसाई, बहेलिया, मछुओं आदि के वर्तनों का उपयोग करना वर्जित था। वे अपने जन्म वाले महीने में तो मांस से परहेज और भी अधिक करते। बदायूनी से ज्ञात होता है कि दीन-ए-इलाही में अकबर ने, ममेरे, फुफेरे, मौसेरे भाई-बहनों के बीच विवाह बंद कर दिया, जो इस्लामी कानून में जायज़ था।

इस धर्म के मानने वालों के लिए जुआ खेलना और सूदखोरी निषिद्ध न थी, यद्यपि इस्लाम में इनका निषेध है।

बदायूनी से ज्ञात होता है कि इस संप्रदाय में एक साथ एक दर्जन व्यक्ति दीक्षित किए जाते। दीक्षित करते समय वे लाल वस्त्र पहनते।

ऐसा जान पड़ता है कि इस धर्म के मानने वालों को मृत्यु के उपरान्त या तो गाड़ा जाता या उनका दाह कर दिया जाता था। उदाहरणार्थ जब राजा महेशदास (बीरबल) की युसुफ़जई पठानों के हाथ मृत्यु हुई तो अकबर कई दिनों तक यही पछताता रहा कि बीरबल का शव मिल जाता तो कम से कम उसका दाह तो हो जाता। बीरबल का शव उस युद्ध में लापता हो गया था। दूसरी ओर शेख ख्वाजा की कब्र पर जालीदार खिड़की लगाई गई कि उस पर सूर्य का प्रकाश पड़े और शेख के सभी पाप धुल जाएं। कब्र के ऊपर एक दीपक भी था (बदायूनी)। यही प्रबंध अकबर की कब्र, सिकन्दरा, में भी है। इसके अतिरिक्त वे अपने मृतकों के गले में अन्न की पोटली बांधते फिर शव को नदी में स्नान करा, ऐसे स्थान पर दाह करते जहां पास में जल न हो (बदायूनी)।

बदायूनी से ही ज्ञात होता है कि इस संप्रदाय के लोग 'दरशनिया' कहलाते। संभवतः वे अपने गुरु, अकबर में ईश्वर का दर्शन करते। इसी कारण अबुल फ़ज़ल ने अकबर का अलौकिक रूप दिखलाया है। आज कुछ इतिहासकारों ने अबुल फ़ज़ल को चाटुकार कहा है, वस्तुतः वह स्थिति न थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुसलमान नाराज

यह कहना उचित नहीं है कि दीन-ए-इलाही के बहाने अकबर इस्लाम का प्रचार कर रहा था। वस्तुतः बदायूनी के वृत्तान्त से ज्ञात होता है कि भारतीय मुसलमानों ने इस धर्म का पूर्णतः बहिष्कार किया था। बदायूनी से यह भी ज्ञात होता है कि अकबर ने अरबी का पठन-पाठन बंद कर दिया। उसने शब्दों के अरबी हिज्जे बदल दिए। बीसवीं शती में जाकर ईरान ने भी यही किया।

बदायूनी लिखता है :

लोग पैगंबर साहब तक का नाम न ले सकते। कितने ही इस्लामी संतों की लोग खिल्ली उड़ाते, इस्लामी कथाओं में वर्णित परी, जिन्न आदि पर अविश्वास करते। इस पर मुस्लिम नेता स्वभावतः बहुत क्षुब्ध होते। एक बार बादशाह के सम्मुख शाहबाज़ खां और बीरबल में झड़प हो गई। शाहबाज खां ने बीरबल से कहा, तू पापी, काफ़िर इस प्रकार बातें करता है, मैं अभी ठीक करता हूं। इस पर बादशाह ने शाहबाज़ खां को गाली दी। फिर भी दीन-ए-इलाही का मुस्लिम समाज ने बराबर विरोध किया। अकबर ने अनेक मुल्लाओं को राज्य से दी गई माफ़ी ज़मीन छीन ली और उनमें प्रमुख मुल्ला मुहम्मद यज्द वाले और मुईज्जुल् मुल्क को यमुना में डुबवा कर मरवा डाला, कई मुल्लों को देश निकाला दिया। यहां तक कि अकबर ने गो-मांस खाना भी वर्जित कर दिया। स्वयं उसने हरम की स्त्रियों के प्रभाव में, लहसुन-प्याज़ तक खाना छोड़ दिया था। दाढ़ी मुड़ाने को वह अच्छा समझता। इस्लाम में सूअर और कुत्ते हराम हैं, पर अब इनसे कोई घृणा न करता। लोग स्वयं लिख-लिख कर देने लगे कि मैंने इस्लाम के सभी रूप त्याग दिए हैं। यह भी नियम कर दिया कि 12 वर्ष की उम्र से पहले सुन्नत न की जाए, उसके बाद भी उस व्यक्ति की इच्छा से ही हो। (बदायूनी)।

बाल विवाह पर रोक

बदायूनी से ही ज्ञात होता है कि अकबर ने कुछ सुधार भी किए। उसने हिजरी मास के स्थान पर ईरानी सौर महीनों का प्रचलन किया। इसी प्रकार उसने इलाही सन् **(तारीख-ए-इलाही)** चलाया। ये महीने और सन् उसके सिक्कों पर भी मिलते हैं। विवाह की उम्र ऊपर उठा दी : लड़कों का विवाह 16 वर्ष की आयु के पहले और लड़कियों का 14 वर्ष की आयु से कम में नहीं हो सकता। मुस्लिम धर्म ग्रंथों, मुस्लिम परंपराओं का अध्ययन बंद कर दिया गया, इसके स्थान पर इतिहास, ज्योतिष, दर्शन, हकीमी, गणित, पद्य और कथा कहानियां, आदि के पठन-पाठन पर जोर दिया गया। यदि कोई हिंदू स्त्री किसी मुसलमान के साथ निकल जाती तो उसे पुनः हिंदू बनाकर घर वालों को सौंप दिया जाता। इसी प्रकार यदि कोई मुस्लिम स्त्री किसी हिंदू के साथ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निकल जाती तो वह अपने घरवालों को वापस दे दी जाती और उसे पुनः मुसलमान धर्म स्वीकार करना पड़ता। जो हिंदू लाचारीवश या जबरन मुसलमान बना लिए गए थे, वे पुनः हिंदू बना दिए गए। बहु-विवाह बंद कर दिया गया। यदि स्त्री बांझ हो तभी कोई दूसरी शादी कर सकता। मुस्लिम विधवाएं पुनर्विवाह कर सकतीं, क्योंकि यह इस्लाम में स्वीकृत है। गौने के पहले ही यदि कोई हिन्दू लड़की विधवा हो जाए तो उसे बलात् सती न किया जाय। यों, कोई सती होना चाहे तो उसे न रोका जाए। सभी संप्रदायों को अपने-अपने धार्मिक स्थल बनाने की अनुमति थी। राज-काज में सभी संप्रदायों के लोग लिए जाते--उनमें कोई भेदभाव न था। एक समय तो राजा मानसिंह कछवाहा ही साम्राज्य के सबसे बड़े मनसबदार थे-----उस समय उनका मनसब सात हजारी था।

हिन्दुओं का न्याय ब्राह्मण करते, मुसलमानों का काज़ी। हिन्दू शपथ लेते समय अग्नि-विष-जल परीक्षा करते। कब्रों में लोग ऐसे गाड़े जाते कि उनका सिर पूर्व की ओर और पैर पश्चिम की ओर रहें, बादशाह इसी प्रकार सोता।

दीन-ए-इलाही विफल

अकबर के बाद दीन-ए-इलाही न चल सका। यों तो अबुल फजल के अनुसार इस पंथ में गांव-गांव से हजारों व्यक्ति थे। अकबर काल में ही इस संप्रदाय में अधिक लोग न आ सके। अकबर के बाद तो इस धर्म में नेतृत्व का अभाव हो गया। यों 1648 तक शाहजहां काल में इस संप्रदाय के लोग थे।

इस प्रकार सर्व धर्म समन्वय का कार्यक्रम आज तक पूरा न हो सका। ऐसा जान पड़ता है कि समाज इसके लिए तैयार न था। धार्मिक नेता भी कट्टरता छोड़ने के लिए प्रस्तुत न थे। इस प्रकार के सुधारवादी आंदोलन के लिए सोलहवीं शती में स्थान न था। संभवतः लोग किसी संत या धर्मगुरु से तो इस तरह की बातें ग्रहण कर लेते, पर बादशाह से नहीं। उसके तीन-साढ़े तीन सौ वर्ष बाद भारत में ही रामकृष्ण परमहंस तथा बाद में गांधीजी ने सर्व-धर्म-समन्वय की बात उठाई। परन्तु इन दोनों ने ही अपने-अपने धर्म में रहकर परस्पर समन्वय की भावना का उपदेश दिया।

अकबर का विद्या प्रेम

अकबर का ज्ञान भी विस्तृत था। वह दिन-रात इतिहास की बातों, प्रकृति की विचित्रताओं, विज्ञान के रहस्यों को भी जानने के लिए प्रयत्नशील था। इन पर बड़े-बड़े ग्रंथ तैयार किए गए। कुछ तो चित्रित भी हुए। इनके ये संस्करण प्राप्त हुए हैं। बदायूनी का कथन है कि इन ग्रंथों में तो थोड़ा सा मसाला आया। इससे कई गुनी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धिक चर्चा होती । बादशाह सभी मतावलंबियों से इन विषयों पर प्रश्न करता । प्रत्येक ात में उसकी खोज की प्रवृत्ति थी । बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक बराबर वह ज्ञान ंग्रह करता रहा । उसकी बुद्धि इतनी पैनी थी कि वह सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय को तुरन्त मझ लेता । फिर, उसकी स्मरण शक्ति ऐसी विलक्षण थी कि उसे सब का सब याद रहता । दायूनी से ही ज्ञात होता है कि अकबर ने पुरुषोत्तम नामक ब्राह्मण को संस्कृत विश्वकोष नाने का कार्य सौंपा था । उसने कुरान शरीफ़ की भी अनेक बातों पर अविश्वास किया यांकि वे तर्क की कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं (बदायूनी) ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

5

हमने देखा कि 1578 में भेड़ा नामक स्थान पर हांके के अवसर पर अकबर की एक विचित्र मानसिक स्थिति हो गई थी वहीं से उसके मन में जो धार्मिक और रहस्यवादी विचार प्रस्फुटित हुए, उनका चरम विकास दीन-ए-इलाही में हुआ। उधर साम्राज्य की गतिविधि अपनी गति से चल रही थी। मुख्यतः अकबरी साम्राज्य को तीन स्थानों से भय था––मिर्ज़ा हकीम, उसका भाई, काबुल में था। बंगाल, बिहार-उड़ीसा में रह-रह कर विद्रोह उठते। गुजरात भी अशांत था। मिर्ज़ा हकीम में योग्यता और दूरदर्शिता का अभाव था। वह मद्यपी था। 1585 में उसकी मृत्यु हो गई और साम्राज्य की एक समस्या दूर हुई। परन्तु युसुफ़जई कबीले के लोग बीच में स्थित थे। उनका विद्रोह चल रहा था। इसी में बीरबल मारे गए।

इस बीच बिहार में तुर्कों ने विद्रोह कर दिया। ये घोड़ों को दाग लगाने के विरुद्ध थे। वेतन भी घटा दिए गए थे। मुल्लाओं को जो बहुत-सी माफ़ी जमीन मिली हुई थी, वह जब्त कर ली गई थी। इसी बीच जौनपुर के काज़ी, यज़्द के मुल्ला मुहम्मद ने ऐलान किया कि अकबर ने इस्लाम त्याग दिया है अतएव उसके विरुद्ध विद्रोह करना पाप नहीं है। मुल्ला मोहम्मद पकड़कर आगरा लाए गए। वहां जमुना में डुबो दिए गए। परंतु इस बीच तुर्कों ने विद्रोह कर दिया और मुहम्मद हकीम को सम्राट घोषित किया। बंगाल से टोडरमल ने तुर्कों पर हमला किया, पर वे स्वयं ही मुंगेर में घिर गए। सीकरी में शाह मंसूर नामक मंत्री, मुहम्मद हकीम को हिंदुस्तान के तख्त पर बैठाने का सपना देख रहा था। उधर काबुल से मुहम्मद हकीम भी इस लालच में बढ़ आया। अफवाह थी कि शाह मंसूर का मुहम्मद हकीम से गुप्त पत्र व्यवहार चल रहा था। अकबर ने शाह मंसूर से मंत्री का पद तो छीन लिया था, परन्तु उसे और अधिक दंड न दिया था। वह सेना के साथ-साथ ही था। जब सेना थानेसर में थी, तब लोगों ने कुछ ऐसे पत्र दिखलाए जिनसे शाह मंसूर और मुहम्मद हकीम का षडयंत्र सिद्ध होता था। अकबर ने शाह मंसूर को फांसी दिला दी। कुछ इतिहासकारों का विचार है कि ये पत्र जाली थे और इन्हें शाह मंसूर के दुश्मनों ने बनाया था।

उधर मुहम्मद हकीम ने सिंध नदी पार कर ली। उसने सोचा था कि इस्लाम के नाम पर हिंदुस्तान की मुस्लिम जनता उसका साथ देगी और अकबर के विरुद्ध उठ खड़ी होगी। परन्तु लाहौर के मुल्लाओं तक ने उसका साथ न दिया। वहां के सैनिक अधिकारियों ने शहर के दरवाजे बंद कर लिए। शाह मंसूर को मृत्यु दंड मिल चुका था। अतः निराश

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो मुहम्मद हकीम काबुल लौट गया। पर वह शांत न बैठा, वह अकबर के मनसबदारों के पास विद्रोह के लिए पत्र भेजता रहा। इन अधिकारियों ने ये पत्र अकबर को दिखला दिए। इसकी खबर पाकर हकीम काबुल से भी भाग गया। अकबर ने राजा मानसिंह और अपने लड़के मिर्ज़ा मुराद को काबुल की ओर भेजा और काबुल का शासन अपनी बहन बख्तुन्निसा बेगम के अधीन कर दिया। जैसा हम ऊपर कह चुके हैं कि कुछ ही समय बाद 1585 में मिर्ज़ा मुहम्मद हकीम की मृत्यु हो गई। पर अकबर लाहौर में ही रुक गया। इस प्रकार 1584-96 तक लाहौर ही मुगल साम्राज्य की राजधानी रहा, वहां से लौट कर वह सीकरी न गया—आगरा में ही रहा।

महाभारत का फ़ारसी अनुवाद

1584 में ही एक दुखद घटना हुई। अकबर के चित्रकारों में सर्वश्रेष्ठ दसवंत था। इसके बनाए कई चित्र मिलते हैं। यह वस्तुतः एक लोक-चित्रकार था और जाति से कहार था। यह दीवारों पर चित्र बनाया करता। संयोगवश बादशाह की इस पर निगाह पड़ गई। गुणग्राही अकबर से इसकी प्रतिभा छिपी न रह सकी। उसने इसे शाही चित्रकार नियुक्त कर लिया। देखते देखते दसवंत (वस्तुतः इसका नाम जसवंत होना चाहिए) सभी चित्रकारों से आगे बढ़ गया। महाभारत के अनुवाद **'रज्मनामा'** में इसके कई सुन्दर चित्र हैं। परन्तु 1584 में इसे उन्माद हो गया और इसने आत्महत्या कर ली। संभवतः इसकी अंतिम कृति **तवारीख-खांदान-ए-तैमुरिया** (तैमूरी वंश का इतिहास) का प्रथम पृष्ठ है। इसमें बालक तैमूर, सम्राट का खेल खेल रहे हैं। यह प्रति पटना के खुदाबख्श पुस्तकालय में है।

इसके पूर्व अकबर की आज्ञा से उक्त 'रज्मनामा' तैयार हुआ था। इसका प्रसिद्ध विद्वान अब्दुर कादिर बदायूनी आदि ने सीधे संस्कृत से अनुवाद किया था। 'रज्मनामा' का अर्थ है—युद्धों की पुस्तक। अकबर का हिंदू ग्रंथों में वर्णित घटनाओं में विश्वास था। इसी प्रकार उसने रामायण का भी फारसी अनुवाद कराया था। ये दोनों ही ग्रंथ बड़े सुंदर चित्रों से सुसज्जित हैं और सौभाग्यवश दोनों ही पूर्ण रूप से सुरक्षित हैं। अब ये जयपुर के सिटी पैलेस म्यूज़ियम में हैं। कहते हैं, अकबर ने स्वयं इनके कुछ अंशों का अनुवाद किया (बदायूनी)। अर्थात, लोग संस्कृत के भाव उसे समझा देते फिर वह उसे अपनी भाषा में कर देता।

बिहार-बंगाल की राजनीतिक स्थिति गड़बड़ ही थी। एक ओर तो विद्रोहियों में आपस में कलह था, दूसरी ओर बादशाही सेनाध्यक्षों में पारस्परिक मतभेद। अतः वहां की स्थिति ठीक करते-करते पांच वर्ष निकल गए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुजरात में घोड़ों को दाग़ लगाने के प्रश्न पर विद्रोह था। वहां का सूबेदार एतमाद खां था। यह पहले से ही गुजरात के सुलतानों का कृपापात्र था। इसी ने मुजफ्फर तृतीय को गद्दी पर बैठाया था। अकबर ने इस पर गुजरात का भार छोड़ा था। परंतु यह ढुलमुल-यकीन था अतः अनेक अधिकारी मुजफ्फर तृतीय से फिर मिल गए। मुजफ्फर तृतीय ने इस बीच गुजरात की राजधानी, अहमदाबाद पर अधिकार कर लिया, उसकी सेना अब काफी बड़ी हो गई थी। अकबर ने इसके विरुद्ध बैराम खां के पुत्र अब्दुर्रहीम को भेजा। यही हिंदी के प्रसिद्ध और प्रिय कवि रहीम के नाम से ज्ञात हैं। उस समय इनकी पदवी मिर्जा-ख़ान थी। उन्होंने 1584 की जनवरी में सरखेज नामक स्थान पर मुजफ्फर तृतीय को हराया। अकबर ने प्रसन्न हो कर अब्दुर्रहीम को खानखाना की उपाधि दी—यह उपाधि उनके पिता, बैराम खां को प्राप्त थी। परंतु जूनागढ़ में रहकर मुजफ्फर उत्पात करता रहता। 1593 में खान आज़म ने उसे पकड़ लिया और गुजरात के सुलतान ने कैदखाने में ही आत्महत्या कर ली।

अब्दुर्रहीम खानखाना

अब्दुर्रहीम पूर्ण रूप से भारतीय थे। उनकी मां मेवाती घराने की थीं अतएव उस ओर उन्हें भारतीय परंपराएं मिली होंगी। जब बैराम खां हज को जाते समय गुजरात में मारे गए तो बालक अब्दुर्रहीम भी उनके साथ थे। स्वामिभक्त साथियों ने उन्हें किसी प्रकार बचाया और सुरक्षित स्थान पर ले गए। वे 969 हिजरी (1561 ई०) में बादशाह के सामने उपस्थित किए गए। अकबर ने उनका पूरा सम्मान किया और उन्हें मिर्ज़ा खान की उपाधि दी। ये गुजरात के प्रबंध में बराबर भाग लेते रहे। कुछ समय बाद ये सलीम के शिक्षक नियुक्त हुए। हम ऊपर देख चुके हैं कि मुज़फ्फर तृतीय ने एक बार अहमदाबाद पर पुनः कब्ज़ा कर लिया था। अब्दुर्रहीम की सेना बहुत छोटी थी—उनके सहायकों ने सलाह दी कि शाही फौज की सहायता आ जाने पर ही आक्रमण किया जाए, कहीं हार हो गई तो भविष्य ही खराब हो जाएगा। पर रहीम ने आक्रमण किया और मुज़फ्फर को बुरी तरह से हराया। इन सब घटनाओं से प्रसन्न हो अकबर ने उन्हें ख़ानख़ाना की उपाधि दी, जो बैराम खां को भी प्राप्त थी। कहते हैं कि ख़ानख़ाना ने गुजरात विजय पर अपनी सारी संपत्ति अपने सैनिकों को बांट दी। एक सिपाही देर से आया—तब उनके पास कुछ भी न बचा था, सिर्फ एक कलमदान था। उन्होंने वही उठाकर दे दिया। वर्षों बाद दक्षिण में एक विजय होने पर उन्होंने पचहत्तर लाख रुपये अपने सैनिकों को बख्शीश दिए।

उपर्युक्त युद्ध पठारी के निकट आष्टी के स्थान पर हुआ। विपक्ष में अहमदनगर की सेना थी। बड़ी भयंकर लड़ाई हुई। अकबर के अनेक प्रमुख सेनापति मारे गए, इनके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अतिरिक्त खानदेश के राजा अली खां भी खेत रहे। फिर भी शाही सेनापतियों ने सोचा कि शत्रु भाग गया। दूसरे दिन प्रातः शाही सिपाही नदी में पानी भरने के लिए गए तो दक्कनी फौज ने उन पर हमला कर दिया। इसमें दक्कनियों के पचीस हजार घुड़सवार थे। दूसरी ओर शाही फौज में केवल छः सौ सिपाही बच रहे थे। लोगों ने खानखाना को समझाया कि लड़ना व्यर्थ है। परंतु खानखाना दृढ़ रहे। उनके पक्ष के लोगों ने कहा कि हम हिंदुस्तानी हैं, हिंदुस्तानी की तरह लड़ेंगे। ऐसे में मृत्यु का ही वरण किया जाता है। एक सहायक ने खानखाना से पूछा कि यदि कोई आवश्यकता पड़े तो आपको कहां पर खोजा जाए। खानखाना ने छूटते ही उत्तर दिया, "वीरगति प्राप्त सैनिकों के शवों के ढेर में पड़ा मिलूंगा।" शाही सेना ने बड़े उत्साह से धावा बोला और उन्हें विजयश्री प्राप्त हुई।

खानखाना जहाँगीर काल में भी बहुत वर्षों तक रहे।

अंग्रेज व्यापारी

इसी बीच इंग्लैंड के व्यापारी भारत आने लगे। इंग्लैंड की रानी एलिज़ाबेथ प्रथम ने 1581 में एक छोटी-सी कंपनी को भारत व्यापार करने का अनुमति-पत्र दिया था। दो वर्ष तीन व्यक्तियों का एक दल भारत आया। इन लोगों ने जहाज़ से भूमध्य सागर तक की यात्रा की। फिर इन्होंने अरब की यात्रा स्थल मार्ग से की। जब ये फारस की खाड़ी पर पहुंचे तो वहां के पुर्तगाली हाकिम ने इन्हें कैद कर लिया और ये लोग गोआ ले आए गए। वहां से ये लोग निकल भागे और घूमते-घामते फतहपुर सीकरी पहुंचे। इनका नेता न्यूबरी था। लंदन लौटते समय वह गुम हो गया। इस दल में फिच नामक एक व्यक्ति था, उसने थोड़ा-बहुत वृत्तान्त लिखा जो प्राप्त है। फिच ही सही-सलामत इंग्लैंड पहुंचा।

इस दल के पास इंग्लैंड की रानी एलिज़ाबेथ प्रथम का अकबर के नाम एक पत्र भी था। रानी एलिज़ाबेथ प्रथम ने अकबर को इस पत्र में 'सबसे बलशाली और अजेय राजाओं में सर्वश्रेष्ठ' संबोधित किया है। उसने अकबर को खंभात का सम्राट लिखा, क्योंकि अंग्रेजों का मुगलों से समुद्र तट पर ही संपर्क हुआ था। इस पत्र में इंग्लैंड की रानी ने अंग्रेज व्यापारियों की सुरक्षा की याचना की थी। यहीं से ब्रिटिश व्यापारियों ने भारत में पैर जमाए, जिससे अंत में ब्रिटिश साम्राज्य कायम हुआ। उस समय न तो एलिज़ाबेथ प्रथम को, न अकबर को ही स्वप्न में सूझा होगा कि इस छोटी सी घटना का ऐसा बड़ा परिणाम होगा। 31-12-1600 को ईस्ट इंडिया कंपनी को रानी एलिज़ाबेथ प्रथम ने अपनी स्वीकृति दी और 1612 ई० में उसका पहला कारखाना सूरत में खुला।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सलीमका विवाह

इसी बीच 1584 में शाहज़ादा सलीम का विवाह आमेर के कुंवर मानसिंह की बहन मानबाई से हुआ। सलीम तब सोलहवें वर्ष में था। उस समय यहां लड़कों का विवाह और भी कम उम्र में होता। परन्तु अकबर ने ही 16 वर्ष वाला नियम बना दिया था और सलीम के विवाह में उसने स्वयं इसका पालन भी किया। विवाह हिंदू रीति से हुआ। राजा मानसिंह ने खूब दान-दहेज दिया। विवाह के बाद मानबाई का नाम शाह बानू रखा गया। जहांगीर उसका बहुत सम्मान करता। परन्तु बाद में 1604 में मानबाई ने जहांगीर के क्रोध और अत्याचार से ऊबकर आत्महत्या कर ली। जहांगीर ने अपनी आत्मकथा में कहा है कि मानबाई के गुणों और सौजन्य का वर्णन नहीं किया जा सकता। मानबाई की ऊंची समझदारी की भी जहांगीर ने तारीफ की। वस्तुतः उस काल में हिंदू स्त्रियों के चरित्र और गुणों की बड़ी ख्याति थी। आईन अकबरी में अबुल फज़ल ने भी लिखा है कि ये बड़ी पतिव्रता होती हैं। इनके बराबर संसार में किसी देश की स्त्रियां नहीं होतीं।

फिर भी मानबाई के भाग्य में अधिक सुख न बदा था। अकबर के अंतिम दिनों में साम्राज्य के उत्तराधिकार को लेकर दो प्रमुख दल हो गए थे। एक दल जहांगीर का समर्थक था, दूसरा सलीम के पुत्र खुसरो का। इस दूसरे दल के नेता स्वयं मानबाई के भाई राजा मानसिंह ही थे। खुसरो उस समय केवल उन्नीस वर्ष का था। संभव है मानसिंह की योजना एक कठपुतली सम्राट बनाने की रही हो। दूसरी ओर सलीम अफीमची और शराबी था। वह अत्यन्त क्रूर हो गया था—तनिक-तनिक सी बात पर वह नौकरों की खाल खिंचवा लेता। अकबर के प्रति भी वह विद्रोही था। अतः स्थिति ऐसी आ गई थी कि संभवतः खुसरो ही सीधे अकबर का उत्तराधिकारी होता। बात इतनी बढ़ गई थी कि जहांगीर के राज्यारोहण पर खुसरो ने विद्रोह कर दिया। पर वह पकड़ा गया और अंधा कर दिया गया फिर वह बहुत दिनों तक अपने छोटे भाई खुर्रम के हवाले बंदी था। खुर्रम ने धोखे से उसकी हत्या करा दी। मानबाई ने सलीम और खुसरो के झगड़े के शुरू में ही संसार से विदा ले ली।

सती रोकी

इस बीच ऐसी घटना हुई जिससे अकबर की दृढ़ मनोवृत्ति का पता चलता है। विंसेंट स्मिथ के अनुसार एक बहुत ऊंचे कुल की राजपूतनी, विधवा हो गई। हम ऊपर देख चुके हैं कि अकबर ने यह नियम बना दिया था कि कोई जबर्दस्ती सती न की जाए। एक दिन अकबर अपने अंतःपुर में बैठा था, वहां लोगों ने बताया कि उक्त राजपूतनी को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके घरवाले जबर्दस्ती सती कर रहे हैं। अकबर ने आव देखा न ताव, अकेले ही एक तेज़ घोड़े पर सवार हो, उड़ चला। पीछे-पीछे उसके निजी सेवक घोड़ों पर दौड़ पड़े। घटना-स्थल पर पहुंचा तो जान पड़ा कि वह अभी सती होने वाली ही है। बादशाह के पहुंचते ही सती संस्कार रुक गया। अकबर चालीस पार कर चुका था फिर भी अभी उसमें नव-युवकों जैसी स्फूर्ति और उत्साह बना था।

उधर कश्मीर का सुलतान युसुफ़ खां अभी तक दरबार में हाज़िर न हुआ। युसुफ़ खां ने बारबार संधि की पर वह स्वयं दरबार में आने से हिचकता रहा। उसने सोचा कि कश्मीर जैसे बीहड़ इलाकों में मुगलों की एक न चलेगी। जब बहुत दबाव पड़ा तो उसने अपने बड़े लड़के को सीकरी भेज दिया। अकबर कश्मीर को पूरी तरह राज्य में मिलाना चाहता था। अतः वह स्वयं रावलपिंडी से अटक आ पहुंचा। वहां से वह कश्मीर के युद्ध पर नियंत्रण रख सकता। दूसरी ओर पख्तून कबीले भी उत्पात मचाए हुए थे। ये कबाइली स्वभाव से स्वतंत्रता-प्रिय रहे हैं। उन दिनों एक और कारण से भी ये संगठित और बहुत उग्र हो उठे। उस इलाके में बायजीद नामक व्यक्ति ने एक नया संप्रदाय चलाया। उस के भक्त तो उसे पैगम्बर के समान पूजते। उसने कुरान शरीफ़ तक की मान्यता न रखी। यह संप्रदाय रोशनिया (प्रकाशयुक्त) कहलाया। ये रोशनिए बायज़ीद को ही साकार ब्रह्म मानते। बायज़ीद का कहना था कि रोशनियों को ही सारे संसार पर राज्य करने का अधिकार है, अतः अन्य धर्मावलंबियों की भूमि छीन लेना उचित है। वह युग ही नए-नए धर्म-गुरुओं का था। 1585 में बायज़ीद मर गया। उसके चौदह वर्ष के लड़के को भक्तों ने पैगम्बर माना। यह संप्रदाय जहांगीर-शाहजहां के समय में भी मुगलों के लिए कांटा बना था, आज भी यह किसी न किसी रूप में जीवित है।

इसी में युसुफ़जई कबीला था। इसी से जैन खां और बीरबल की मुठभेड़ हुई। पर यों, इस मुठभेड़ के समय युसुफ़जई कबीले के लोग रोशनियों से अलग हो चुके थे। मुगल सेना इनके उपद्रवों से इतनी त्रस्त थी कि अकबर को नई फ़ौज भेजनी पड़ी।

बीरबल की मृत्यु

अकबर अटक से ही इन कबाइलियों के विरुद्ध युद्ध संचालन कर रहा था। अकबर ने तीन ओर से उनके विरुद्ध सेना भेजी। तीनों सेनाएं बढ़ते-बढ़ते एक स्थल पर मिल गईं, ऐसा जान पड़ा कि उस क्षेत्र पर शाही सिक्का जम गया। परंतु इन तीनों सेनाध्यक्षों में इसी बात पर विवाद छिड़ गया कि कौन सर्वोच्च सेनापति है। इनमें एक राजा बीर-बल थे। उनकी राय थी कि शाही जीत हो चुकी, अब लौट चलना चाहिए। इसमें उनसे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हकीम अबुल फतह सहमत थे। दूसरी ओर जैन खां की नीति थी कि वहां केंद्र स्थापित कर इन कबाइलियों को और सताना चाहिए। उन दिनों शाही सेनापतियों में प्राय: मतभेद हो जाता। दक्षिण के मोर्चे पर भी यही हाल हुआ। फलत: शाही सेना की बड़ी हानि होती और जीत भी हाथ में आकर निकल जाती।

पाश्चात्य विद्वान प्राय: बीरबल को विदूषक के रूप में चित्रित करते हैं। उनकी राय में अकबर की यह राजनीतिक भूल थी कि उसने विदूषक को ऐसे युद्ध का सेनापति बना दिया। पर अकबर जैसा अनुभवी सम्राट ऐसी भूल नहीं कर सकता था। बीरबल का वास्तविक नाम राजा महेशदास था और वह जाति से ब्राह्मण थे। वीरवर, जिसका लोक प्रचलित रूप बीरबल है, उनकी वीरता का सूचक था। अकबर ने उन्हें कविराज की भी उपाधि दी थी। वे एक संभ्रांत व्यक्ति और शाही मनसबदारों में से थे। इसके पूर्व भी वे कई महत्वपूर्ण पदों पर रह चुके थे। वे नगरकोट के शासक थे। वे कई स्थानों पर दूत बनाकर भेजे गए थे। वे कुशल सेनापति रहे होंगे तभी अकबर ने उन्हें ऐसे कठिन मोर्चे पर भेजा। इसमें भी वे सफलतापूर्वक आगे बढ़ते गए।

बीरबल का विदूषक वाला रूप केवल किस्सों में मिलता है। ये कहानियां मुगल दरबार के शिष्टाचार के नितांत विरुद्ध हैं। इनके अतिरिक्त मुहम्मद शाह के काल के पहले ऐसा कोई कहानी नहीं मिलती। राजा बीरबल दार्शनिक प्रकृति के व्यक्ति थे, अबुल फ़ज़ल ने उनके सिवा अन्य किसी हिंदू का नाम इस सूची में नही दिया है। उनकी ब्रजभाषा कविता ऊंचे दर्जे की है, उसमें भी तात्विक विचार मिलते हैं।

परन्तु इस बार राजा बीरबल अपनी योजना में चूक गए। जान पड़ता है उनमें हठ और क्रोध की मात्रा बहुत थी। उन्होंने परिस्थिति को नहीं समझा और जैन खां के ऊपर गुस्से में अपनी जान गंवाई। जैन खां की सलाह को अनसुनी कर वे ऐसे रास्ते से लौटे जहां कबाइलियों का जोर था। ज्यों ही ये लोग मलंदराई दर्रे के बीच पहुंचे कि कबाइलियों ने आक्रमण कर दिया। शाही सेना की भारी क्षति हुई, उसके 8,000 सैनिक मारे गए। बीरबल भी खेत रहे। इसके अतिरिक्त कबाइलियों ने बहुत बड़े परिमाण में सैनिक सामग्री लूट ली। बीरबल के शव तक का पता न चला। बीरबल की मृत्यु पर अकबर शोकार्त हो उठा—उसने जैन खां को फटकारा कि पराजय हुई तो क्या, बीरबल का शव क्यों न लाए ? कम से कम उसका दाह तो हो जाता। जैन खां ने अपनी विवशता प्रकट की क्योंकि वह तो बीरबल के अधीन था। इससे भी ज्ञात होता है कि उस युद्ध के सर्वोच्च सेनापति बीरबल ही थे।

बीरबल की मृत्यु ही उन्हें इस युद्ध में खींच ले गई। कहते हैं कि अकबर का विचार अबुल फ़ज़ल को इसमें भेजने का था। परन्तु बीरबल ने बड़ा आग्रह किया। इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
पर अकबर ने गोटी डाली, उसमें बीरबल का नाम निकला और वे मोर्चे पर गए। यदि बीरबल केवल विदूषक होते तो स्वयं को क्यों युद्ध में झोंकते? पर अबुल फ़ज़ल को अभी प्राय: बीस वर्ष और जीना था, उनकी अकाल मृत्यु कुछ दूसरे ही प्रकार से होनी थी।

हम ऊपर देख चुके हैं कि बीरबल का शव युद्धक्षेत्र में लापता हो गया था, जिस का अकबर को बड़ा दुख भी था। बदायूनी से ज्ञात होता है कि 1587 में यह अफवाह फैली कि बीरबल जिंदा है। लोगों ने बादशाह से यहां तक कहा कि बीरबल को नगरकोट की पहाड़ियों में देखा गया है, वे जोगियों और सन्यासियों के झुंड में हैं। बादशाह को इस पर कुछ-कुछ विश्वास भी हो गया—उसने सोचा कि हो सकता है कि युसुफ़जई कबीले से हार जाने के कारण बीरबल विरक्त हो गए हों। बादशाह ने नगरकोट आदमी भेजा। कुछ दिन बाद खबर आई कि बीरबल कालिंजर में हैं। वहां के करोड़ी (तहसीलदार) ने कहा कि नाई ने एक व्यक्ति के शरीर में ठीक वैसे ही निशान देखे जो बीरबल के थे। पर जांच करने पर पता चला कि यह सब गप्प थी।

कश्मीर पर विजय

उधर बीरबल पख्तूनों पर भेजे गए थे, इधर राजा भगवानदास आदि कश्मीर की ओर रवाना हुए। वहां के सुलतान युसुफ़ खां ने मूलियास दर्रे पर शाही फौजों को रोका। तभी बरफ पड़ने लगी, शाही फौज़ भूखों मरने लगी। अत: युसुफ़ खां से किसी प्रकार संधि की। युसुफ़ खां तथा उसका लड़का याकूब खां अकबर के सामने हाज़िर हुए। कहते हैं अकबर ने राजा भगवानदास द्वारा की हुई संधि स्वीकार न की और राजा भगवानदास ने आत्महत्या करने के लिए स्वयं अपने आप को कटार मार ली। पर वे बच गए। याकूब खां भाग निकला। पर उसकी श्रीनगर के लोगों ने कुछ भी मदद न की। अत: मुगलों का कश्मीर पर आसानी से कब्जा हो गया। याकूब खां कैद कर बिहार भेज दिया गया और उसे पांच सदी का मनसब भी बना दिया गया। वह बिहार में राजा मानसिंह का सहायक नियुक्त हुआ। अकबर कई बार कश्मीर गया, वह उसे बहुत प्रिय था। कश्मीर को अकबर खासा बाग या अपना निजी उद्यान कहता।

कुछ समय बाद राजा मानसिंह कछवाहा का पद बहुत बढ़ गया। उनके पिता का देहान्त हो चुका था, उधर उनकी बहन से जहांगीर को खुसरो नामक पुत्र हुआ। अब राजा मानसिंह को बंगाल की जागीर भी मिल गई थी। वे सात हजारी बना दिए गए। इस समय वे अकबर के साम्राज्य के सबसे उच्च पदस्थ मनसबदार थे। उन्हें अजमेर में रहने की सुविधा भी मिल गई।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

6

अकबर के इधर कई मित्र और प्रमुख सहायक चल बसे। बीरबल की मृत्यु का हाल आप पढ़ चुके हैं। राजा भगवानदास को संभवतः उन्माद हो गया था, उसी में उन्होंने एक बार आत्महत्या की भी चेष्टा की थी। इधर इनकी मृत्यु हुई उधर कुछ ही दिन बाद राजा टोडर मल भी चले गए। ये टंडन खत्री थे। शेरशाह के समय से ही राजकीय सेवा में थे, उसी समय से इन्होंने मालगुजारी व्यवस्था में सुधार किया था। अकबर के राज्य में इनको मालगुजारी व्यवस्था को पूरी तरह सुधारने का मौका मिला। ये उन्नति करते-करते अकबरी साम्राज्य के वकील (प्रधान मंत्री) हो गए। इन्होंने फारसी को प्रचलित करने का बहुत प्रयत्न किया, क्योंकि वही साम्राज्य की राज-भाषा थी। ये हिन्दू धर्म पर दृढ़ थे। अबुल फज़ल ने ऐसे हिंदू-मुसलमानों की खिल्ली उड़ाई है जिन्हें वह कट्टर समझता था। उसने टोडरमल की धार्मिकता पर भी बार-बार कटाक्ष किया, पर वह इनकी ईमानदारी का कायल था।

कश्मीर, बलूचिस्तान, काबुल की समस्याएं हल करने के बाद अकबर की इच्छा अपने पूवर्जों की भूमि तूरान (बुखारा) को विजय करने की थी। परन्तु उस ओर उज़बेगों का बड़ा जोर था। भारत से उतनी दूर जाकर आक्रमण करना खतरे से खाली न था। अतः अकबर ने समझदारी से तूरान-विजय की योजना छोड़ दी। इस बीच उसने सिंध पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली।

दक्षिण विजय का प्रयत्न

अकबर का साम्राज्य अब पूरे उत्तर भारत में एक-छत्र था, केवल मेवाड़ के राणा से अभी भी मुठभेड़ होती रहती थी। अब अकबर के राज्य की सीमाएं दक्खन के सुलतानी राज्यों को छू रही थीं। ये राज्य मुस्लिम शासकों के थे, और मुख्यतः सोलहवीं शती में ही स्थापित हुए थे। ये राज्य मुस्लिम बहमनी साम्राज्य से टूट कर बने थे, जिसका इसी शती में अंत हुआ था। इन राज्यों में आपसी कलह था। अकबर ने इस झगड़े का लाभ उठाया। गुजरात पूर्ण रूप से उसके हाथ में आ गया था। उससे निश्चित होकर अकबर दक्षिण की ओर झुका। अकबर ने यह अनुमान किया होगा कि इन सल्तनतों की विजय भी बिना किसी कठिनाई के हो जाएगी, परन्तु हुआ कुछ और ही। इसे पूरा करने में मुगल वंश की चार पीढ़ियां बीत गईं और 100 वर्ष से भी अधिक समय लगा। इतना ही नहीं, औरंगज़ेब की हठधर्मी से मुगल साम्राज्य की इतनी शक्ति और साधन दक्षिण विजय में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
नष्ट हुई कि उसी के बाद मुगल साम्राज्य की अवनति शुरु हुई और फिर वह ऐसा लड़खड़ाया कि अपने पैरों पर न खड़ा हो सका।

अकबर के पक्ष में एक बात अवश्य थी——ये दक्खनी राज्य बरार, खानदेश, अहमद नगर और बीजापुर आपस में लड़ते रहते थे। 1577 में ही अकबर ने इन राज्यों को अपने दूत भेजे थे। उधर 1578 में अहमदनगर ने बरार पर कब्ज़ा कर लिया।

खानदेश के सुलतान, राजा अली खां ने अकबर से संधि कर ली। वह दक्खनी सल्तनतों के आपसी झगड़ों से तंग आ चुका था। इनमें से एक भी राज्य ऐसा न था जो अन्य दक्खनी राज्यों का नेतृत्व करता और वे संगठित हो अकबर से मोरचा ले सकते। अकेले राजा अली खां का मुगलों से लोहा ले सकना असंभव था। अब अकबर दूसरी समस्याओं से छुट्टी पा, दक्खन की ओर मुड़ा। उसने 1591 में अबुल फज़ल के बड़े भाई और दरबार के कवि फ़ैजी को राजा अली खां के पास तथा अहमदनगर के सुलतान, बुरहान निज़ाम शाह के पास भेजा। ऐसे ही दूत बीजापुर और गोलकुंडा भेजे गए। इनमें अली खां तो पहले से ही अकबर के अधीन था। अहमदनगर के सुलतान ने फ़ैज़ी के साथ दुर्व्यवहार सा किया। बीजापुर और गोलकुंडा के सुलतानों ने कुछ उपहार आदि भेजा। यह उपहार इतना अधिक था कि मानो कर ही दिया हो। इससे बात टल गई।

अकबर ने दक्खन पर हमला करने के लिए मुराद को मालवा में तैनात कर रखा था, अब वह गुजरात में था। उधर उससे छोटा शाहज़ादा दानियाल, लाहौर से रवाना हुआ। अब्दुर्रहीम खानखाना और बीकानेर के रायसिंह उसके शिक्षक के रूप में उसके साथ थे। परन्तु जब मुराद ने सुना कि दानियाल भी आ रहा है, तो वह विद्रोह के लिए उतारू हो गया। उधर उड़ीसा और कश्मीर में पुनः विद्रोह हो उठे थे, अतः अकबर दक्खन में विशेष प्रगति न कर सका।

हिजरी संवत के हजार वर्ष

1592 में हिजरी के अनुसार एक हजार वर्ष पूरे हुए। इस्लामी दुनिया में विश्वास था कि इस सन् में एक नए महदी या पैगंबर अवतरित होंगे। सैकड़ों वर्षों से इस्लाम-जगत् इस दिन की प्रतीक्षा कर रहा था, इसी उपलक्ष में महदी नाम के अंतर्गत कितने ही नए संप्रदाय उत्पन्न हो गए थे। कुछ इतिहासकारों का विचार है कि स्वयं अकबर महदी कहलाना चाहता था, इसी से उसने दीन-ए-इलाही चलाया।

अकबर ने इस अवसर को बड़ी धूम-धाम से मनाया। वर्षों से उसके दरबार में इस सहस्राब्दी का इतिहास लिखा जा रहा था जो तारीख-ए-अलफी के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी सचित्र प्रति के पन्ने विदेशों में बिखरे पड़े हैं। इसका मुख्य भाग तैमूरी वंश का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतिहास हो है। फ़ारसी भाषा में पहले अक्षर अलिफ़ से एक हजार का बोध होता है अतः इसे अल्फी कहा गया। अकबर के इस वर्ष वाले सिक्कों पर भी अलिफ़ अक्षर लिखा गया।

पुर्तगालियों का खतरा

अकबर पुर्तगालियों के खतरे को भी देख रहा था। पश्चिमी तट पर, विशेष रूप से गुजरात में, दमन और दियु में पुर्तगालियों की उपस्थिति उसे न सुहाती। अकबर जैसे शक्तिशाली सम्राट के लिए पश्चिमी तट से पुर्तगालियों को खदेड़ देना कुछ भी कठिन न था। पर एक बड़ी कठिनाई थी। मुगलों ने कभी भी समुद्री शक्ति––जहाजी बेड़ा न खड़ा किया था। उधर अरब सागर पुर्तगाली लुटेरे जहाजों से भरा था। मुगल जब हज करने मक्का जाते तो उन्हें ये पुर्तगाली लुटेरे सताते और लूट लेते। हार कर, अकबर को पुर्तगालियों का ही सहारा लेना पड़ता। अतः प्रारंभ में पुर्तगालियों से एकाध झड़पें हुईं। पर मुगलों ने उन्हें न छेड़ा। यदि एक बार कमर कस कर अकबर इन्हें निकाल फेंकता तो यह नासूर ही न पैदा होता। उसने सोचा कि दक्खन के सुलतानों पर विजय प्राप्त करने के बाद पुर्तगालियों पर हमला किया जाए। एक बार बातचीत में अकबर ने कहा भी था कि खानदेश और अहमदनगर जब हमारे हाथ आ जाएगा तो बीजापुर का आदिल खां स्वयं अधीनता स्वीकार कर लेगा। तब पुर्तगालियों से गोआ छीन लेना कठिन न होगा। उधर दक्खनी सुलतानों का पुर्तगालियों से बड़ा मेल था। बुखारा के अब्दुल्ला खां उज़बेग को भेजे गए अपने पत्र में अकबर ने लिखा कि इन (पुर्तगालियों) कांटों को राह से निकालना ही है। पर उसका यह स्वप्न पूरा न हो सका।

अहमदनगर पर चढ़ाई

उधर दक्खन के सुलतानों में आपसी विग्रह चल रहा था। अहमदनगर के बुरहानुल् मुल्क की मृत्यु हो चुकी थी, उसका पुत्र इब्राहीम गद्दी पर आया। पर बीजापुर के सुलतान इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय ने 1595 में उसे हरा दिया। अकबर ने इस परिस्थिति का लाभ उठा कर अपने पुत्र मुराद और उसके अभिभावक के रूप में अब्दुर्रहीम खानखाना को अहमदनगर पर आक्रमण करने के लिए भेजा। जैसा कि मुगल सेनापतियों में अक्सर ही होता था, खानखाना और मुराद में मतभेद हो गया। किसी प्रकार शाही फौजों ने अहमदनगर के किले पर हमला किया। वहां बुरहानुल् मुल्क की विधवा चांदबीबी ने, जो बीजापुर के सुलतान की बहन थी, मुगलों का डटकर सामना किया। पर मुगलों के आगे अहमदनगर की क्या बिसात थी! अंत में संधि हुई और बुरहानुल् मुल्क के पौत्र बहादुर को अहमदनगर के सिंहासन पर बैठाया गया। उसने अकबर की अधीनता स्वीकार की। बरार का प्रांत मुगलों को सौंप दिया गया। पर अकबर इस अधूरी विजय से संतुष्ट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं हुआ क्योंकि मुगल सेना ने अहमदनगर की किलेबंदी को तो बुरी तरह ध्वंस कर दिया था। पर खानखाना और मुराद की ईर्ष्या और फूट के कारण मुगल सेना अहमदनगर पर अधिकार न कर सकी।

मुराद और ख़ानख़ाना में कोई तुलना न थी। मुराद मद्यपी, अहम्मन्य और दुष्ट प्रकृति वाला था। उसमें सेना संचालन की कोई योग्यता न थी। खानखाना चतुर राजनीतिज्ञ और दूरदर्शी थे। मुराद तो सलीम (जहांगीर) को अपदस्थ कर बादशाह बनने के सपने देख रहा था क्योंकि अकबर सलीम से भीतर ही भीतर अप्रसन्न था। मुराद के विषय में इतिहासकार बदायूनी लिखता है, "शाहज़ादा अपने को पका अंगूर समझता, यों वह कच्चा अंगूर भी नहीं है।" अतः दक्खन का युद्ध गिरते-पड़ते चलता रहा। पर अहमदनगर की स्थिति अच्छी न थी। वहां के सरदार चांदबीबी के ही विरुद्ध षडयंत्र करने लगे। अब उसका वहां नियंत्रण न रहा। कुछ सरदार बरार प्रांत पर पुनः अधिकार कर लेने का प्रयत्न करने लगे। उनकी मुगलों से फिर ठन गई। 1597 में, अर्थात् चार वर्षों के प्रयत्न के बाद, खानखाना ने गोदावरी के किनारे अहमदनगर की सेना को गहरी शिकस्त दी। पर मुगल फौज को भी भारी हानि पहुंची। अंत में खानखाना और मुराद के वैमनस्य से तंग आकर अकबर ने एक अन्य सरदार को दक्खन के मोर्चे पर भेजा। एक वर्ष बाद अकबर स्वयं इस मोर्चे पर आ गया।

अकबर लाहौर में 1585 से 1598 प्रायः तेरह वर्षों तक रहा। इसके मुख्य कारण थे, मिर्जा मुहम्मद हकीम का विद्रोह, सिंध में गड़बड़ी, कश्मीर विजय। इतना ही नहीं साम्राज्य की पश्चिमोत्तर सीमा पर उज़बेगों का बड़ा आतंक था, किसी भी समय उनके आक्रमण की आशंका थी। इस बीच हकीम की मृत्यु (1585), कश्मीर और सिंध पर विजय तथा उज़बेगों के नेता अब्दुल्ला खां की मृत्यु (1598) हो गई। अतः अकबर इन समस्याओं से निपट कर दक्खन की ओर चल पड़ा।

तीन वर्ष का अकाल

परन्तु इस बीच कई महत्वपूर्ण घटनाएं हुईं : 1595 में अकाल पड़ा जो तीन वर्षों तक चलता रहा। अबुल फ़ज़ल लिखता है, "वर्षा बहुत कम हुई। दैवज्ञों ने ग्रह-शान्ति की और हर ओर अन्न और भोजन बांटा गया। बादशाही हुक्म के अनुसार ज़रूरतमंद लोगों को प्रतिदिन सहायता दी जाती। इतना ही नहीं, जो सहायता दे सकते, उनसे सहायता दिलवाई जाती।" अन्य वृत्तांतों से ज्ञात होता है कि हालत ऐसी हो गई कि आदमी एक दूसरे को खाने लगे। सड़कें शवों से भर गईं। इसी के साथ महामारी फैल गई जिससे गांव के गांव और शहर के शहर साफ़ हो गए। इसके पहले भी दो-एक बार अकाल पड़ चुका था, पर तब वह गुजरात तक ही सीमित था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उधर 1599 में अति मद्यपान से मुराद की मृत्यु हो गई। इस पर दक्खन के मोर्चे का सिर-दर्द दूर हुआ। इस समय अहमदनगर में फिर आपसी झगड़ों का बोलबाला था। चांदबीबी ने या तो स्वयं ही विषपान कर लिया था, या उसकी हत्या कर दी गई थी। अहमदनगर पर मुगलों का अधिकार हो गया, वहां के सुलतान सपरिवार कैद कर ग्वालियर के किले में बंद कर दिए गए। फिर अभी भी अहमदनगर सल्तनत का कुछ भाग स्वतंत्र बच गया था।

असीरगढ़ पर कब्जा

हम ऊपर देख चुके हैं कि खानदेश के सुलतान ने एक प्रकार से मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। वह मुगलों के पक्ष में लड़ते हुए मारा गया था। उसके लड़के ने अपने पिता और मुगलों के बीच हुई संधि तोड़ दी, अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी और असीरगढ़ के दरवाजे बंद कर, उसमें छिप रहा। असीरगढ़ दक्खन के राजमार्ग पर स्थित था। यह वस्तुतः बहुत मजबूत किला था। उस काल में असीरगढ़ का किला संसार का एक आश्चर्य ही था। लोग उसे मज़बूती में अद्वितीय मानते। असीरगढ़ एक पहाड़ी पर स्थित है। इतना ही नहीं, दो स्थानों को छोड़ यह सारा भाग पहाड़ियों से घिरा है। इसमें हथियार भी काफी इकट्ठे थे। इस पर मुर्तज़ा खां और अबुल फ़ज़ल ने आक्रमण किया पर मुगलों की गोलाबारी का कोई असर न हुआ। घेरेबन्दी से भी इसका कुछ न बिगड़ा क्योंकि किले में पर्याप्त भोजन-सामग्री और पीने का पानी था। फिर इस किले पर मुगलों का कैसे कब्जा हुआ, यह प्रश्न होता है। कुछ इतिहासकारों ने लिखा है कि किले के अंदर महामारी फैल गई, अतएव उन लोगों ने हथियार डाल दिए। दूसरी ओर कुछ विद्वानों का अनुमान है कि मुगलों ने किले के कुछ अधिकारियों को मिला लिया और उन्हें घूस देकर किले पर कब्जा कर लिया। इस किले में कुछ पुर्तगाली भी सुलतान की तरफ से लड़ रहे थे। वे पकड़कर बादशाह के सामने लाए गए। लोगों ने बताया कि इन लोगों ने अपना ईसाई धर्म छोड़कर इस्लाम स्वीकार कर लिया। कहते हैं, बादशाह इस पर बहुत नाराज़ हुआ कि इन लोगों ने स्वधर्म छोड़कर पराया धर्म क्यों अपनाया।

अकबर ने खानदेश का नाम अपने पुत्र दानियाल के नाम पर 'दानदेश' कर दिया और बरार, अहमदनगर मिलाकर उसे एक नया सूबा बना दिया गया। उत्तर में स्थिति ठीक न थी, सलीम विद्रोही हो रहा था। अकबर दक्खन से लौट आया। 1601 में उसने फतहपुर सीकरी के बुलंद दरवाजे पर यह लेख खुदवाया—यह संसार एक पुल है। इस पर से गुजर जाओ, पर इस पर घर न बनाओ। सांसारिक आनंद क्षणिक हैं अतः जीवन भगवद्भक्ति में बिताओ, उसके सिवा जो बचता है, वह मूल्यहीन है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अकबर विगत पैंतालीस वर्षों तक परिस्थितियों से जूझता रहा था। संभवतः सभी मोर्चों पर सफलता मिली। पर अब वह थक रहा था––संभवतः उसे संग्रहणी रोग भी था, इसी से आगे चलकर उसकी मृत्यु हुई। ऊपर हमने उसका जो उद्गार बुलंद दरवाजे पर अंकित देखा, उसमें भी विराग की भावना है। दूसरी ओर, असीरगढ़ विजय का धूमधाम से समारोह हुआ। इसके उपलक्ष में उसने एक नए प्रकार का सिक्का भी चलाया, जिसपर पंडुक पक्षी अंकित है। जहांगीर काल का लेखक रेवरेंड सैमुअल परवास नामक यूरोपी कहता है कि बादशाह का स्वप्न गंगा-सिंध से लेकर कन्या-कुमारी तक जीतने का था। पर अकबर धीरे-धीरे टूट रहा था। सलीम विद्रोही था, मुराद मद्यपान करते-करते चल ही बसा था। दानियाल में भी कोई योग्यता न थी। अकबर के कई अंतरंग मित्र पहले ही इस असार संसार को छोड़ चुके थे। एक दोहा प्रचलित है, जो अकबर का ही कहा माना जाता है––

पीथल सों मजलिस गई, तानसेन संग राग।

हंसिबो, मिलबो, खेलिबो, गयो बीरबल साथ॥

भले ही यह अकबर की रचना न हो, पर यह उसकी मनः स्थिति को प्रकट करती है। अब तूरान (बुखारा) से कन्या कुमारी तक एक देश, एक साम्राज्य बनाने का उसका स्वप्न तिरोहित हो चुका था। फिर भी उसने हुमायूं के गिरते मुगल साम्राज्य को एक बार पुनः खड़ा कर दिया। अकबर काल में ही मुगल साम्राज्य की वास्तविक स्थापना हुई।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

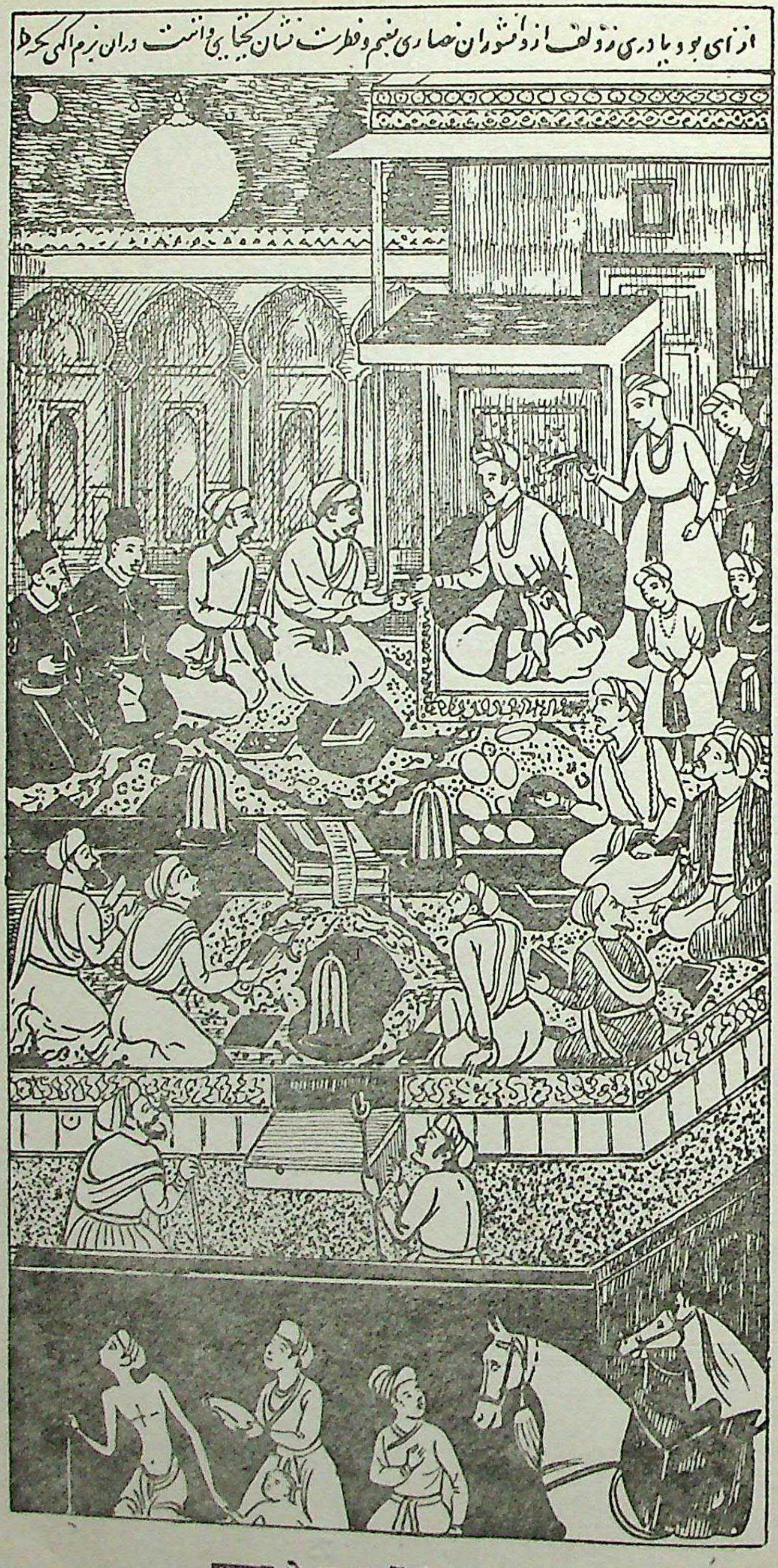

अकबर के दरबार में ईसाई पादरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

7

अकबर के अंतिम चार-पांच वर्षों में महत्वपूर्ण घटनाएं न हुईं। एक प्रकार से यह समय उसके और सलीम के बीच तनाव का समय था। अन्य मोर्चों पर शान्ति ही रही। मेवाड़ के विरुद्ध अभियान चल रहा था पर वह शिथिल हो चुका था। महराणा प्रताप ने अनेक कष्ट उठाए, पर अकबर की अधीनता न स्वीकार की। 1597 में महाराणा प्रताप की मृत्यु हो गई और उनके पुत्र महराणा अमरसिंह मेवाड़ की गद्दी पर आए। अकबर का ध्यान काबुल, कश्मीर, सिंध, दक्खन आदि की ओर था अतएव उसका मेवाड़ के मोर्चे पर उतना दबाव न था। इस परिस्थिति का लाभ उठा मेवाड़ी छापामार फौजों ने कुछ क्षेत्र जीत लिए थे, पर वे उससे अधिक प्रगति न कर सके। अंत में जहांगीर काल में, 1615 में महाराणा अमरसिंह ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली पर उन्हें कुछ विशेष अधिकार और सम्मान भी प्राप्त हुए।

अंग्रेज़ और पुर्तगाली

अंग्रेज़ व्यापारी पुनः अकबर के दरबार में आए। हम देख चुके हैं कि इंग्लैंड की रानी एलिज़ाबेथ प्रथम का आज्ञापत्र लेकर दो-तीन व्यापारी बड़ी कठिनाइयां झेलते हुए अकबर तक 1583 में पहुंच सके थे। 1600 की 31 दिसंबर को लंदन में एलिज़बेथ प्रथम ने ईस्ट इंडिया कंपनी को स्वीकृति दे दी। जब इस कंपनी का गठन हो ही रहा था तब उसके एक कर्मचारी जान मिल्डेनहाल ने एलिज़बेथ प्रथम से अकबर के नाम एक पत्र प्राप्त किया। इस पत्र में इंग्लैंड की रानी ने अकबर से वे ही सुविधाएं देने की प्रार्थना की थी, जो पुर्तगाली व्यापारियों को प्राप्त होती थीं। मिल्डेनहाल कुछ दूर तक तो समुद्र से आया, शेष भाग स्थल मार्ग से पार करता हुआ वह 1603 में आगरा पहुंचा।

इस समय अंग्रेज़ और पुर्तगाली व्यापारियों में भारी प्रतिद्वंद्विता रही होगी। अंग्रेज पुर्तगाली व्यापारियों का व्यापार अपने कब्ज़े में कर लेना चाहते थे। अकबर से वे यह भी स्वीकृति चाहते थे कि अंग्रेज़ पुर्तगालियों के जहाज़ या बंदरगाहों पर अधिकार कर लें। दूसरी ओर पुर्तगालियों का अकबरी दरबार से पुराना संबंध था। जिस समय मिल्डेनहाल आगरा पहुंचा, पुर्तगाली मिशनरी दरबार में आते-जाते थे। ऐसा जान पड़ता है कि दरबार में एक दल पुर्तगालियों का तरफदार था। स्वयं बादशाह भी उनसे संतुष्ट था। दूसरी ओर सलीम अंग्रेज़ों के पक्ष में था। अकबर अब क्रमशः सलीम की मुट्ठी में आ गया था—अतः अकबर ने अंततोगत्वा अंग्रेज़ों से मिलना स्वीकार किया। अंग्रेज़ व्यापारियों के कागज़-पत्रों से ज्ञात होता कि बादशाह तक पहुंच पाने के लिए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुर्तगालियों की नौ सेना।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन्होंने कुछ बड़े अधिकारियों को नगद घूस तक दी। यहीं से अंग्रेज़ों की गंदी राजनीति शुरू हो जाती है। पर पुर्तगाली अंत तक उनका विरोध करते रहे। उन्होंने बादशाह के कान भर दिए थे कि सामान्यत: अंग्रेज चोर-जासूस होते हैं। यहां तक कि कुछ पुर्तगाली पादरियों ने अंग्रेज व्यापारियों को विरत करने के लिए इन्हें ज़हर दे दिया। पर अंत में अंग्रेज़ों ने ही बाजी मार ली, अकबर के सामने वे आए। उन्होंने बड़ी कीमती नज़रें पेश कीं परंतु तब तक अकबर का अंत आ चुका था। संभवत: उन्हें अनुमति पत्र जहांगीर के राज्यारोहण के प्रारंभ में मिला।

वस्तुत: उस समय ईस्ट इंडिया कंपनी का ध्यान भारत की ओर उतना न था। वे तो ओलंदियों (हालैंड वालों) को उखाड़ कर मसाले के द्वीपों (आधुनिक इंडोनेशिया) पर कब्ज़ा करना चाहते थे। उसमें जब वे असफल हुए तो उन्होंने भारत में अपने पैर जमाए। उनका पहला कारखाना सूरत (गुजरात) में 1612 में खुला। सूरत उस समय पश्चिमी देशों के व्यापार का बहुत बड़ा बंदरगाह था।

सलीम का विद्रोह

उधर मुगल राज-परिवार में गड़बड़ी चल रही थी। सलीम क्रमश: अकबर के प्रति विद्रोही होता जा रहा था। 1600 में वह अजमेर का सूबेदार था। उसके मार्ग का कंटक, उसका भाई मुराद, हट चुका था। उसका अन्य प्रतिद्वन्द्वी दानियाल हो चुका था। पर उसे अधिक खतरा स्वयं अपने बड़े पुत्र खुसरो से था। हम ऊपर देख चुके हैं कि शाही दरबार का एक वर्ग सलीम से असंतुष्ट था और खुसरो को अकबर के बाद तख्त पर बैठाना चाहता था। इस बीच सलीम ने कुछ ऐसे काम किए कि अकबर का मन उसकी ओर से हट गया। अजमेर में सलीम का प्रमुख सहायक शाहबाज़ खां नियुक्त किया गया था। वह बहुत दौलत छोड़कर मर गया। कायदे के अनुसार वह संपत्ति शाही खजाने में होनी चाहिए थी, पर सलीम ने उसे अपने पास रख लिया। अब विद्रोह करने के लिए उसके पास धन भी हो गया था। सलीम की गतिविधि देखते हुए राजा मानसिंह ने उसे सुझाव दिया कि बंगाल-उड़ीसा पर कब्ज़ा कर लो। वस्तुत: मानसिंह सलीम का विरोधी हो गया था, वह खुसरो को गद्दी दिलवाना चाहता था। संभवत: उसने सलीम को दूर फेंकने के लिए यह चाल चली थी। पर सलीम भी कच्चा खिलाड़ी न था। वह अजमेर से पूरब की ओर तो चला, पर इलाहाबाद में आकर रुक गया। इलाहाबाद में गंगा-यमुना के संगम पर अकबर ने 1583 में एक सुदृढ़ किला बनवाया था जो आज भी वहां है। उसने ही इस शहर का नाम 'इलाहाबास' रखा था क्योंकि प्रयाग में इला या ऐल वंश की राजधानी कही जाती है। इस 'इलाहाबास' शब्द का प्रयोग बार-बार अकबरी सिक्कों पर आता है। बाद में इसी शब्द का अपभ्रंश रूप इलाहाबाद हो गया, जो आज

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अकबर के दरबार में जिराफ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
भी प्रचलित है। इलाहाबाद का किला बन जाने पर, इस प्रांत का केन्द्र जौनपुर से हट-कर यहीं आ गया था।

अजमेर से चलने पर सलीम के मन में आगरा पर अधिकार करने का विचार आया। आगरा में बेशुमार शाही दौलत थी। उसके हाथ में आ जाने पर सलीम के तख्त पर बैठने का मार्ग खुल जाता। वह आगरा के बहुत निकट तक आ गया था। वहां अकबर की मां हमीदा बानू, उसे समझाने के लिए मिलना भी चाहती थी, पर सलीम कावा काट कर निकल गया। इलाहाबाद पहुंचकर उसने बिहार की मालगुजारी अपने हाथ में ले ली, उसे तीस लाख रुपये प्राप्त हुए। इतना ही नहीं, उसने अपने विश्वासपात्र लोगों को बिहार, जौनपुर आदि में नियुक्त किया।

अकबर दक्खन से लौटकर आगरा पहुंचा ही था कि उसे समाचार मिला कि सलीम तीस हजार सवार लेकर आगरा की ओर आ रहा है। वह इटावा तक पहुंच भी गया था जो आगरा से कुल 73 मील पर था। अकबर ने एक फरमान जारी कर सलीम को बंगाल-उड़ीसा की सूबेदारी दी और उसे इलाहाबाद लौट जाने का आदेश दिया। सलीम बंगाल तो न गया, पर वापस इलाहाबाद आ गया। वहां आते ही उसने अपने को सम्राट घोषित कर दिया और अपने नाम के सोने-चांदी के सिक्के चला दिए।

दूसरी ओर सलीम ने आगरा में अकबर के पास अपना एक दूत भी भेजा पर बात कुछ बनी नहीं क्योंकि सलीम अकबर से इस शर्त पर मिलना चाहता था कि उसके साथ सत्तर हजार सेना भी हो। अकबर इस शर्त का अर्थ भली-भांति समझता था क्योंकि यदि इतनी बड़ी सेना आगरा के निकट आ जाती तो अकबर करीब-करीब सलीम का कैदी ही हो जाता। फिर तो अकबर का वही हाल होता जो प्रायः पचास वर्ष बाद औरंगजेब के हाथों शाहजहां का हुआ। अकबर के हाथ में अभी भी अपार शक्ति थी। वह चाहता तो सलीम को पीस देता, परन्तु एक तो सलीम को अधिक प्यार करता था, दूसरे वह आपसी खून-खराबा नहीं चाहता था।

अबुल फ़ज़ल की हत्या

असहाय अकबर ने सलाह के लिए अबुल फ़ज़ल को बुलवाया। अबुल फ़ज़ल अभी भी दक्खन में ही था। यद्यपि पद में उससे बड़े-बड़े अधिकारी थे, परंतु वह अकबर का निकट-तम व्यक्ति हो गया था। वह सलीम के विपक्ष में था। अकबर ने सारा वृत्तान्त लिखवा कर अबुल फ़ज़ल के पास भिजवा दिया था। अतः अबुल फ़ज़ल अकबर से मिलने के लिए आगरा रवाना हुआ।

इधर सलीम ने सोचा कि यदि अबुलफ़ज़ल आगरा आकर अकबर को अपनी सलाह देगा तो बादशाह का मन और भी खट्टा हो जाएगा। अतः उसने अपने मार्ग के इस कंटक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को निकालने का निश्चय किया । ओरछा का राजा वीर सिंह सलीम का विश्वस्त सहायक था । जब अबुल फ़ज़ल का दल ग्वालियर के निकट आंतरी के थोड़ा आगे पहुंचा तो उसके साथियों ने सामने बुंदेलों को देखा । उसके साथियों ने सलाह दी कि थोड़ा पीछे हटकर आंतरी में स्थिति दृढ़ कर ली जाए, वहां अबुल फ़ज़ल के और सहायक भी थे । पर अबुल फ़ज़ल ने कहा कि आगे बढ़कर पीछे लौटना कायरों का काम है । अब शत्रु को पीठ दिखाना उचित न होगा । निदान, वीर सिंह ने अपनी सेना के साथ अबुल फ़ज़ल को घेर लिया । अबुल फ़ज़ल के सैनिक मारे गए और स्वयं उसका सिर काटकर, वीरसिंह ने सलीम के पास इलाहाबाद भेज दिया । इस प्रकार तत्कालीन भारत के सर्वश्रेष्ठ बौद्धिक, मुस्लिम परंपरा के विद्वान और उदार धार्मिक विचार (सुलह कुल) दीन-ए-इलाही के प्रणेता अबुल फ़ज़ल का अंत हुआ । अबुल फ़ज़ल और मानसिंह के सिवा अकबर के सभी घनिष्ठ मित्र और सहायक मर चुके थे । अबुल फ़ज़ल की मृत्यु से अकबर को बड़ा आघात पहुंचा । तीन दिनों तक वह हरम से बाहर न निकला । उस काल में यह बहुत बड़ी बात थी क्योंकि एक दिन बादशाह झरोखे पर दर्शन न दे तो विद्रोह हो जाने की आशंका हो जाती थी ।

वस्तुतः अकबर इस समूचे परिवार से बड़ा स्नेह करता । 1589 के अन्त में अबुल फ़ज़ल की मां चल बसी । अकबर स्वयं अबुल फ़ज़ल के घर गया और उसने तरह-तरह से सांत्वना दी : यदि सांसारिक व्यक्ति सदैव यहीं रहते तो लोगों को ईश्वर-भक्ति की कैसे याद आती । यह तो सराय है, अतः ईश्वर की इच्छा माननी ही पड़ती है । (अकबरनामा)

1595 में फ़ैज़ी मृत्युशय्या पर पड़ा था, बोली बंद हो चुकी थी । बदायूनी से ज्ञात होता है कि रात बारह बजे अकबर उसे देखने गया और साथ में अपने शाही हकीम को भी ले गया । पर तब तक फैज़ी की बोली बिलकुल बंद हो चुकी थी । अकबर ने कहा, "शेखजीव*, मैं आपके लिए हकीम अली को लाया हूं, फिर भी आप कुछ न बोलेंगे?" जब फैज़ी जवाब न दे सका तो अकबर ने अपनी पगड़ी उतार कर ज़मीन पर फेंक दी—यह उन लोगों का शोक प्रकट करने का परंपरागत ढंग था—और फिर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा ।

स्वयं अबुल फ़ज़ल की मृत्यु का समाचार अकबर को देने की किसी की हिम्मत न पड़ी । उस समय ऐसा चलन था कि किसी राजपुरुष की मृत्यु पर उसका वकील (प्रमुख सहायक) अपने हाथ में नीला दुपट्टा लपेट कर दरबार में उपस्थित होता । निदान, अबुल फजल का वकील इस रूप में अकबर के सामने आया तो अकबर को बड़ा ही शोक हुआ । उस समय के वृत्तान्त से जान पड़ता है कि अकबर इस प्रकार रोया

*यह आजकल प्रयुक्त हिन्दी रूप 'जी' का पुराना रूप है और मुगल सम्मानार्थ इसका प्रयोग करते ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैसा अपने पुत्र के मरने पर भी न रोया। वह कई दिनों तक बार-बार एक शेर ही दुहराता रहा।

अबुल फ़ज़ल के शोक से अकबर जब स्वस्थ हुआ तो उसने वीर सिंह के विरुद्ध फौज भेजी। पर शाही फौज वीर सिंह को पकड़ या मार न सकी। वह पहाड़ों में छिप गया था, एकाध बार सामना भी हुआ। वीर सिंह पर वार भी किया गया, पर वह बच निकलता। बाद में जहांगीर ने तख्त पर आने के बाद वीर सिंह को बहुत सम्मान और ऊंचा ओहदा दिया। जहांगीर ने अपनी आत्मकथा में इसका उल्लेख भी किया है। उसने लिखा है कि अबुल फ़ज़ल को रोकना आवश्यक था अन्यथा वह जाकर बादशाह के और कान भरता।

सलीम से मेल व दानियाल की मृत्यु

अब स्थिति बहुत विकट हो गई थी। अत: अकबर की एक पत्नी सलीमा बेगम ने पिता-पुत्र में मेल कराने का बीड़ा उठाया। सलीमा बेगम अकबर की फुफेरी बहन तथा बैराम खां की स्त्री थी। बैराम खां की मृत्यु के बाद अकबर ने उससे विवाह कर लिया था। इसी से अकबर का मुराद नामक पुत्र था। सलीमा बेगम ने समझौते के प्रयास के लिए बादशाह से पहले स्वीकृति प्राप्त की, फिर वह इलाहाबाद जाकर सलीम को आगरा ले आई। सलीम ने बादशाह को भारी नज़र भेंट की। अकबर ने अपना पगड़ी उतार कर सलीम के सिर पर रख दी। इस प्रकार अकबर ने सलीम को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। अकबर सलीम को मेवाड़ के मोर्चे पर भेजना चाहता था। परन्तु सलीम फतहपुर सीकरी जाकर रुक गया फिर इलाहाबाद चला गया। इस बीच दानियाल का विवाह बीजापुर की शाहजादी से हुआ। परन्तु दानियाल का मद्यपान बढ़ता गया। अब्दुर्रहीम खानखाना की पुत्री भी उसको ब्याही थी। खानखाना ने बहुत चेष्टा की कि दानियाल शराब छोड़ दे। यहां तक कि एक प्रकार से दानियाल पहरे में रख दिया गया। उसके नौकरों को सख्त हिदायत दी कि कोई उसे शराब न दे। परन्तु बंदूकों की नली में भर कर शराब उसके पास तक पहुंच जाती। कोई भी उपाय न चला। विवाह के कुछ ही समय बाद, अप्रैल 1604 में उसकी मृत्यु हो गई। एक मास बाद अकबर को यह दुखद सूचना मिली। उसे बड़ी ही पीड़ा हुई, उसने समझा कि खानखाना ने दानियाल पर सख्ती न की इसी का यह दुष्परिणाम हुआ। वह खानखाना पर भी इस कारण नाराज़ हुआ। परन्तु बाद में उसे पूरा समाचार ज्ञात हुआ तो उसने खानखाना को क्षमा कर दिया।

अब सलीम अपने भाइयों में अकेला बच रहा था। दरबार में भी सलीम के विपक्षियों को अब कुछ और ही रास्ता निकालना पड़ा, अतएव उन्होंने सलीम के पुत्र खुसरो को आगे किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सलीम आगरा में

सलीम का ढंग ठीक नहीं चल रहा था। अकबर ने स्वयं इलाहाबाद जाकर उसे ठीक करने का विचार किया। उधर सलीम को यह खबर मिली कि अकबर खुसरो को ही साम्राज्य देना चाहता है। बात बढ़ रही थी, ऐसा जान पड़ा कि पिता-पुत्र में युद्ध होकर रहेगा। अकबर ने बंगाल की चढ़ाई के बहाने इलाहाबाद की ओर प्रस्थान भी किया। पर चलते ही कुछ अपशकुन हुए। अकबर ने अपना मन तो नहीं बदला, परन्तु प्रयाण रोक दिया। उधर अकबर की मां हमीदा बानू ने देखा कि यदि अकबर और सलीम में यह युद्ध हुआ तो सलीम का नाश ही हो जाएगा। अकबर के अनुभव और सेना के आगे भला सलीम क्या टिक पाता! उसने अकबर को बहुत समझाया-बुझाया पर उसने एक न सुनी। हमीदा बानू का दिल टूट गया और वह बीमार पड़ गई। अकबर कुछ आगे बढ़ गया था, पर मां की बीमारी का हाल सुन लौट आया। पांच दिन बाद हमीदा बानू की मृत्यु हो गई। हमीदा बानू को हुमायूं की कब्र (दिल्ली) में दफन किया गया। इस प्रकार अड़तालीस वर्ष बाद हमीदा बानू, मृत्युलोक में अपने पति से फिर मिल गई।

अब अकबर ने सलीम पर चढ़ाई करने का विचार त्याग दिया। सलीम को समझाने का कार्य मीर सद्र जहां ने उठाया। वह सलीम को प्रिय था। उसने सलीम को समझाया कि अब शंका की क्या बात है, आपके दोनों भाई तो गत हो ही चुके हैं। सलीम झुका और आगरा की ओर चला। उसने यह घोषणा की कि मैं हमीदा बानू की मृत्यु पर आगरा जा रहा हूं। उसने दरबार में उपस्थित हो, अकबर को भारी नज़र भेंट की। अकबर ने भी उसके प्रति बड़ा वात्सल्य दिखलाया। पर ज्यों ही सलीम अकबर को दंडवत कर रहा था कि बादशाह ने उसे पकड़ लिया और उसे खींच कर वह भीतर ले गया। वहां ले जाकर उसने सलीम को कई थप्पड़ जोर से लगाए। यद्यपि सलीम अब पैंतीस वर्ष का हो गया था, फिर भी उस युग में ऐसा दंड देना पिता के अधिकार में था। अकबर ने सलीम का मखौल भी उड़ाया——यदि तुम्हारे पास सत्तर हज़ार सवार हैं तो तुम्हें यहां अकेले आने की क्या ज़रूरत थी।

फिर अकबर ने कहा कि सलीम बीमार है अतः इसे हमाम में बन्द करो। सलीम पर कड़ा पहरा बैठा दिया गया कि वह शराब-अफीम आदि न ले सके। राजा शालिवाहन निगरानी पर रखे गए। एक हकीम सलीम की दवा करने पर नियुक्त किया गया। सलीम के सभी प्रमुख साथी पकड़ कर बांध दिए गए।

चौबीस घंटे तक सलीम बिना अफ़ीम के रहा। फिर अकबर को दया आ गई और अकबर ने स्वयं अपने हाथों सलीम को अफीम दी। इस बीच अकबर की रानियों ने सलीम को माफ़ कर देने के लिए बहुत मिन्नत की। इस प्रकार सलीम का छुटकारा हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सलीम बिलकुल पस्त हो गया था। अकबर के आज्ञानुसार वह दानियाल के स्थान पर गुजरात-खानदेश की सूबेदारी करने के लिये राज़ी हो गया। पर वह आगरा में ही बना रहा। अकबर ने उसके लिए समुचित आवास आदि का प्रबन्ध कर दिया। सलीम के सत्तर हज़ार घुड़सवार तितर-बितर हो गए। अकबर ने भी हुक्म निकाल दिया कि दरबार में हाज़िर होते समय सलीम चार से अधिक अनुचर साथ न लावे। इस प्रकार सलीम के ग्यारह महीने आगरा में बीत गए।

अकबर की अंतिम बीमारी

पर अकबर की अंतिम घड़ी आ पहुंची थी। हम देख चुके हैं कि प्रायः पंद्रह वर्ष पूर्व अकबर को संग्रहणी हो चुकी थी। अकबर को पुनः संग्रहणी का प्रकोप 21 सितम्बर 1605 को हुआ। अकबर का चिकित्सक हकीम अली था, जो सीमांत युद्ध में बीरबल के साथ था। उसने पहले आठ दिन तो कोई खास दवा न दी कि रोग स्वयं ठीक हो जाएगा। अकबर कुछ सुधर भी रहा था। पर एक छोटी सी घटना हो गई और उससे अकबर को इतना मानसिक क्षोभ हुआ कि उसे फिर दस्त आने लगे। उधर सलीम को हटाकर खुसरो को सत्ता दिलवाने का षड़यंत्र चल ही रहा था। एक दिन सलीम अकबर से मिलने आ रहा था कि अज़ीज़ कोका और मानसिंह ने उसे गिरफ्तार करने की योजना बनाई। पर सलीम को इसका पता चल गया और वह उलटे पांव भाग निकला।

अज़ीज़ कोका और मानसिंह ने प्रमुख मनसबदारों की एक सभा की। उन लोगों ने इन मनसबदारों को बहुत समझाया कि सलीम के बदले खुसरो को सिंहासन मिले। पर ये मनसबदार इससे सहमत न हुए क्योंकि इससे गृहयुद्ध छिड़ जाने की आशंका थी। साथ ही, यह मुगल वंश की परंपरा के विपरीत था। इससे इतना तो हुआ कि रामदास कछवाहा ने, जो सलीम का समर्थक था, खजाने पर अपने विश्वस्त राजपूतों का पहरा बैठा दिया। बारहा सैयदों ने भी सलीम का समर्थन किया। अतः कुछ उपाय न देख मानसिंह खुसरो को साथ लेकर बंगाल चला गया।

सलीम ने अकबर के पास आना छोड़ दिया था। उसे भय था कि कहीं कोई उसे रास्ते में ही न मार डाले। पर इस बीच उसने अपनी स्थिति मज़बूत कर ली थी। सब तो सब उसने यह भी वचन दिया कि गद्दी पर आने के बाद वह बदले की भावना से काम न करेगा। इस वचन का उसने पालन भी किया। उधर मनसबदारों ने भी सलीम की रक्षा का वचन दिया।

अंतिम क्षण सलीम को ताज

22 सितंबर 1605 को सलीम अकबर के पास आया। पर अकबर की बोली बंद थी। फिर भी उसे चेत था। बादशाह ने संकेत किया। उसे समझ कर सलीम ने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अकबर की पगड़ी पहन ली और बादशाही कमरबंद बांध लिया। उस युग में बिस्तर पर भी पगड़ी पहने ही सोने का रिवाज था। अत: अकबर ने अपने सिर पर से उतार कर पगड़ी सलीम को दी होगी। पलंग के पायताने हुमायूं की तलवार लटक रही थी। अकबर के इशारे पर सलीम ने उसे भी अपनी बगल में बांध लिया। सभी ने समझ लिया कि अकबर ने जाब्ते से सलीम को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। तुरन्त आगरा में यह बात फैल गई। ज्योंही सलीम अकबर के कक्ष से बाहर आया, लोगों ने उसकी मुक्त कंठ से जय-जयकार की।

कुछ ही देर बाद, थोड़े से लोगों के बीच अकबर ने प्राण त्यागे। कहते हैं इन लोगों ने बार-बार अकबर को रसूल का नाम याद दिलाया, पर अकबर ने उसकी ओर ध्यान तक न दिया। दूसरी ओर ऐसा जान पड़ता था कि वह अल्लाहो अकबर का जप कर रहा है। वही मंत्र अकबर के सर्व-धर्म-समन्वय और एकेश्वरवाद का प्रतीक था। अंतिम क्षण तक अकबर ने अपने इस अटूट विश्वास का पालन किया। जहांगीर ने बाद में अपनी आत्मकथा में लिखा है कि अकबर एक क्षण के लिए भी परमात्मा का विस्मरण न करता। उसी ईश्वर या सत्य की खोज में उसने अपना जीवन लगा दिया, पर उसका साक्षात्कार न कर सका।

अकबर की मृत्यु पर शोक

अकबर की मृत्यु से जनमानस में गहरा शोक छा गया होगा। अकबर-जहांगीर काल के जैन जौहरी बनारसीदास ने अपनी पद्यमय आत्मकथा में इसका वर्णन किया है। उस समय बनारसीदास जौनपुर में थे——वहां जब यह दुखद समाचार पहुंचा तो बलवा हो गया। लोगों ने अपने-अपने दरवाजे बंद कर लिए। बाजार-हाट बंद हो गए। दस दिन तक यही हाल रहा, फिर जहांगीर की दुहाई फिरी और नगर का काम फिर शुरू हुआ। स्वयं बनारसीदास की दशा तो ऐसी हुई कि मानो उन्हें व्यक्तिगत क्षति हुई हो। बनारसीदास ने अकस्मात जो अकबर की मृत्यु का समाचार सुना तो वे सीढ़ी पर बैठे थे, अचेत होकर गिर पड़े। उनके मुख से 'देव' निकल पड़ा। उनका सिर फूट गया और आंगन खून से लाल हो गया। सभी हाय-हाय कर उठे।

सभी का यह हाल था। बनारसीदास लिखते हैं कि प्रजा मानो अनाथ हो गई, उसका स्वामी चला गया। जौनपुर के निवासी भयभीत हो गए, उनका मुख पीला पड़ गया और हृदय व्याकुल हो उठा। ऐसी ही प्रीति थी अकबर के प्रति प्रजा में।

अकबर का जनाज़ा निकला। सलीम ने भी कंधा दिया, शोक-वस्त्र धारण किए। शाही परिवार के अन्य लोगों ने भी कंधा दिया। उस समय भारतीय परम्परा के अनुसार किले की दीवार में एक छेद किया गया, उसी में से जनाज़ा निकला। अकबर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने ही इस किले का निर्माण कराया था, इसी कारण बाद में आगरा का ही नाम अकबराबाद पड़ा।

अकबर ने मुस्लिम परंपरा के अनुसार अपने जीवन में ही अपना रोज़ा बनवा दिया था। यह आगरा से कुछ ही दूर सिकंदरा नामक स्थान में है। वहां उसे दफ़न किया गया। बाद में जहांगीर को वह इमारत पसंद न आई, उसने पंद्रह लाख रुपये के व्यय से उसे फिर से बनवाया। जहांगीर की आत्मकथा से ज्ञात होता है कि वह अकबर का भारी प्रशंसक हो गया था। वह कोई अच्छी चीज़ देखता तो अकबर की याद करता, अच्छे और दुर्लभ फल खाता तो अकबर का वियोग उसे दुःख देता।

अकबर तो चला गया, पर भारतीय संस्कृति पर अपनी अमिट छाप छोड़ गया। अकबर के विषय में जनमानस पर क्या छाप पड़ी इसे हम शिवाजी के उस पत्र में देख सकते हैं जो उन्होंने औरंगज़ेब को लिखा था——

"अकबर ने इस बड़े राज्य को बावन बरस तक ऐसी सावधानी और उत्तमता से चलाया कि सब फिरकों के लोगों ने सुख और आनन्द पाया। क्या ईसाई, क्या मुसाई, क्या दाऊदी, क्या फलकिये, क्या नसीरिए, क्या दहरिये, क्या ब्राह्मण और क्या सेवड़े, सब पर उनकी समान कृपादृष्टि रहती थी। इसी **सुलह कुल** के बर्ताव के कारण सब लोगों ने एक मुंह से उन्हें **जगत्गुरु** की पदवी दी थी। इसी प्रभाव के कारण वे जिधर देखते थे, फतह उनके सामने आकर खड़ी हो जाती थी।" (सर जदुनाथ सरकार)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

8

जहांगीर के आत्मचरित से भी अकबर और अकबर काल के विषय में अनेक महत्व-पूर्ण जानकारियां प्राप्त होती हैं। इनसे अकबर के चरित्र का अच्छा पर्यवेक्षण हो जाता है। आगरा का वर्णन करते हुए वह कहता है: "यह हिन्दुस्तान (आर्यावर्त) का एक विशिष्ट नगर है। वहां पहले भी एक किला था परंतु पिता ने मेरे जन्म के पूर्व ही वहां तराशे हुए लाल पत्थर का एक किला बनवाया। संसार में घूमे हुए व्यक्ति कह सकते हैं कि इसको कोई बराबरी नहीं है।.....नगर नदी (यमुना) के दोनों ओर बसा है। इसके पश्चिमी भाग में अधिकांश बस्ती है, उसका घेरा सात कोस का है और चौड़ाई एक कोस है। नदी के दूसरी ओर पूर्व में, ढाई कोस के घेरे में तथा आधे कोस की चौड़ाई में, बस्ती है। इनमें इतने मकान हैं कि ईरान, खुरासान और तूरान के कई नगर समा जाएं। अनेक लोगों ने दो-दो तीन-तीन मंजिलों के मकान बना लिए हैं। इतनी घनी आबादी है कि गलियों और बाज़ारों में चलना कठिन है।... आगरा के लोग कला-कौशल में प्रवीण हैं, और विद्या-व्यसनी हैं।"

अकबर के व्यक्तित्व के विषय में जहांगीर लिखता है: "...वे बीच के क़द के थे, या कुछ लंबे क़द की ओर थे। उनका रंग गेहुंआ था, उनकी आंख और भौंहें काली थीं। वे सिंह के जैसे थे, उनकी छाती चौड़ी थी, और हाथ लंबे। उनकी नाक के बांए, मटर के दाने के आधे के बराबर एक मसा था जो बड़ा सुन्दर लगता। सामुद्रिक शास्त्रवेत्ता इसे चरम सौभाग्य और उन्नति का लक्षण मानते। उनकी आवाज ऊंची थी, जब वे बोलते तो बड़ी गंभीर ध्वनि होती। अपनी चाल-ढाल में वे साधारण मनुष्य न जान पड़ते, वरन् ऐसा जान पड़ता कि ईश्वर का प्रकाश ही प्रत्यक्ष हो गया है।...."

अकबर के पारिवारिक प्रेम का एक सुन्दर उदाहरण इस प्रकार है, "(अकबर को) बीबी दौलत शाद से कन्या, शकरुन्निसा बेगम हुई। यह प्रारंभ से ही मेरी (जहांगीर की) दुलारी है। भाई-बहन में ऐसा प्रेम दुर्लभ है। ऐसी परंपरा है कि शिशुओं के स्तन को निचोड़ देते हैं और उससे एक बूंद दूध निकलता है। [यह मुगलों की अपनी परंपरा रही होगी।] इस प्रकार मेरी शिशु बहन का भी स्तन निचोड़ा गया, उससे जब दूध की एक बूंद निकली तो पूज्य पिता (अकबर) ने कहा, 'बाबा, इस दूध को पीले कि वस्तुतः तेरी यह बहन तेरी मां के समान हो जाए।' ईश्वर ही इसे जानता है कि उस दिन से उस बहन के प्रति मेरा वैसा ही स्नेह हो गया जैसा बच्चों का अपनी मां के प्रति होता है।" जहांगीर ने जन्म भर ऐसा प्रेम रखा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जहांगीर की एक दूसरी (सौतेली) बहन भी थी। अकबर उससे भी बहुत प्रेम करता, यहां तक कि उसकी छोटी-मोटी बातों पर भी ध्यान देता। उसने जहांगीर से कहा था, "बाबा, मेरे बाद भी इसके प्रति ऐसा ही स्नेह रखना क्योंकि हिन्दी में जिसे 'लाड़ली' कहते हैं, यह वैसी ही है। अतएव मेरे बाद भी इसकी बातों का ख्याल करना।" परंतु जहांगीर की यह बहन ज्यादा दिन जिन्दा न रही।

जहांगीर लिखता है: "मेरे पिता के सद्‌गुण प्रशंसा के परे थे। यदि उन पर ग्रंथ भी लिखे जाएं, अथवा पितृभक्ति छोड़कर भी मैं उनका वर्णन करूं तो उन गुणों का अंश ही वर्णन कर सकता हूं। असीम साम्राज्य, धन-दौलत और हाथी-घोड़ों के स्वामी होते हुए भी वे ईश्वर के दरबार में दीनता से 'बाल भर' परे न थे। वे एक क्षण भी ईश्वर को न बिसारते।"

"वे हर जाति और धर्म के अच्छे लोगों से मिलते-जुलते। वे विद्वानों का सत्संग करते—विशेष रूप से भारतीय पंडितों का। यद्यपि उन्हें अक्षर ज्ञान न था फिर भी विद्वानों के साथ रहते-रहते उन्हें तत्वज्ञान इतना स्पष्ट हो गया था कि कोई जान ही न पाता कि उन्होंने पढ़ा-लिखा नहीं है। इसी प्रकार गद्य-पद्य का उन्हें ऐसा परिचय था कि कोई सोच ही न सकता कि यह सब सुन-सुन कर ही है।"

"उनका अनुग्रह सभी मतावलंबियों और वर्गों को प्राप्त था। समुद्र से घिरी हुई पृथ्वी भर उनका राज्य था। उसमें भिन्न-भिन्न धर्मों के पंडितों के लिए स्थान था। शिया-सुन्नी, फिरंगी और यहूदी एक ही धर्मस्थान पर उपासना करते।"

"वे केवल डेढ़ घड़ी ही सोते क्योंकि रात में वे जितना अधिक जागते, उतना ही लंबा दिन मानते (अधिक कार्य करने का अवसर समझते)।"

"उनमें यह अद्‌भुत क्षमता थी कि मदोन्मत्त और क्रुद्ध हाथी भी उनके वश में हो जाते। प्रायः ऐसे हाथी अपने महावतों और हथनियों पर आक्रमण नहीं करते परंतु कुछ ऐसे क्रुद्ध हाथी होते हैं जो महावतों और हथनियों तक को घायल कर देते हैं। मेरे पिता दीवार या पेड़ की डाली पर से ऐसे हाथियों पर कूद पड़ते और उन्हें शांत कर देते।"

जहांगीर की आत्मकथा से अकबर के दीन-ए-इलाही मत के संबंध में भी कुछ और जानकारी होती है। आईन-ए-अकबरी से ज्ञात होता है कि इस संप्रदाय के मानने वाले 'चेले' कहलाते। इसके लिए इस्लामी परंपरा में 'बंदा' शब्द प्रचलित था। परंतु अकबर को आपत्ति थी कि कोई व्यक्ति ईश्वर का ही 'बंदा' (दास) हो सकता था, मनुष्य का नहीं। अतः उसने जोगियों की परंपरा से 'चेला' शब्द चुना। जहांगीर लिखता है— "परगना शाहाबाद में डेरा हुआ। मैंने शेख अहमद लाहौरी को, जो पुराना सेवक, खानाज़ाद (परंपरागत सेवक) और चेला भी था, मीर अदल (न्यायाध्यक्ष) का पद दिया। स्वर्गीय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बादशाह (अकबर) के समय में, यही लोगों (दीन इलाही के उम्मीदवारों) को उसकी सेवा में उपस्थित करता। जो व्यक्ति "शास्त" (इस शब्द का ठीक-ठीक अर्थ नहीं ज्ञात होता) और "छवि" (अकबर का चित्र जिसे लोग अपनी पगड़ी में धारण करते) के योग्य होते, इनके लिए उनकी सिफारिश करता। दीन-ए-इलाही में लिए जाते समय 'चेलों' को निम्न-लिखित उपदेश दिए जाते :—

(1) अपने कानों को मत-मतान्तर के विवादों से गंदा न करो।
(2) सभी मतों का आदर करो।
(3) शिकार या युद्ध के अतिरिक्त किसी जीव की हिंसा न करो।
(4) प्रकाशपुंजों (चंद्र-सूर्य आदि) का आदर करो क्योंकि इनमें परमात्मा का तेज प्रत्यक्ष हुआ है।
(5) हर समय परमात्मा की शक्ति और व्यापकता का स्मरण करते रहो।
(6) क्षण भर के लिए भी, बाहर या भीतर, परमात्मा को न बिसारो।

जहांगीर कहता है : मेरे पूज्य पिता इन विचारों से ओत-प्रोत थे और इन्हें क्षण भर के लिए भी न भूलते।

जहांगीर ने अकबर को अपने इहलोक तथा परलोक के देवता के रूप में अनेक बार स्मरण किया है। यद्यपि राजनीति के सिलसिले में पिता-पुत्र में मतभेद हो गया था, परंतु इससे जहांगीर के मन में पश्चात्ताप ही था। अपने पिता के समय की अनेक घटनाओं का उसने वर्णन किया है।

एक बार जहांगीर काबुल के शहर आरा बाग में चश्मे के किनारे था। उसे याद आया कि अकबर के साथ वहां आया था तो उसने चश्मे को उछल कर पार कर लिया था। अब चालीस वर्ष का होने पर वह छलांग मार कर पार कर सका—परंतु कठिनाई से। उसके अनेक सरदार भी पार न कर सके। संभवत: मुगलों को ऐसे खेल पसंद थे।

ऐसा जान पड़ता है कि अकबर अपने खेलों का वर्णन सुनाया करता था। हम अन्यत्र देख ही चुके हैं कि किशोरावस्था में वह हरम में अमीर हम्ज़ा आदि की कहानियां सुनाया करता। इसके अतिरिक्त हम यह भी देख चुके हैं कि उसने एक बार हवाई नामक हाथी को रणबांका नामक हाथी के पीछे दौड़ा दिया था। संयोगवश जहांगीर ने अपने आत्म-चरित में स्वयं अकबर की आपबीती दी है : "मैं उस समय बिलकुल नौजवान था। उस दिन मैंने दो-तीन प्याले चढ़ा रखे थे। मैं एक मस्त हाथी पर सवार हुआ। यद्यपि मैं होश-हवास में था, परंतु मैंने ऐसा बहाना किया, मानों मैं नशे में हूं। हाथी बहुत अच्छी तरह सिखाया हुआ था और पूरी तरह मेरे बस में था, पर मैंने ऐसा प्रकट किया कि हाथी बदमाश है और मैं उसे भीड़ पर चढ़ा रहा हूं। इसके बाद मैंने एक और हाथी मंगवाया और अपने हाथी से उसे लड़वाया। वे दोनों लड़ते-लड़ते यमुना पुल पर पहुंच

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गए। इस बीच दूसरा हाथी भाग खड़ा हुआ, पर भागने को और कोई रास्ता न था अतः वह पुल पर ही दौड़ गया। मेरा हाथी पूरी तरह से वश में था मैं चाहता, तो उसे रोक लेता, परंतु तब लोग कहते कि बादशाह बनावटी लड़ाई कर रहा है, न तो वह नशे में ही है। बादशाहों को ऐसे नाटक नहीं करने चाहिए। अतः मैंने भी भगवान के नाम पर छोड़ दिया। नाव का पुल था अतः जब भी किसी हाथी का पैर नाव के पुल पर पड़ता तो उसका एक छोर तो पानी में डूब जाता, और दूसरा ऊपर उठ जाता। लोग भय के समुद्र में डूब गए। पर भगवद्कृपा सर्वोपरि है और उसी से इस भक्त (अकबर) की सर्वत्र रक्षा हुई। अतः दोनों हाथी सकुशल पार उतर गए।"

मुगल शाहज़ादे प्रायः 15 वर्ष की अवस्था के पहले शराब न पीते। परंतु खुर्रम 24 वर्ष का हो गया और कई बच्चों का बाप भी हो गया, फिर भी उसने मदिरा सेवन न किया। इस पर उसकी वर्षगांठ के अवसर पर जहांगीर ने स्वयं उसे शराब पिलाई। इस अवसर पर जहांगीर लिखता है (पृ० 307): "यों तो मेरी शैशवावस्था में, मेरे पिता की आज्ञा से मेरी माताओं ने खांसी की दवा के तौर पर गुलाबजल में एक तोला मदिरा मिला कर दी थी, पर मैंने 15 वर्ष की अवस्था तक शराब नहीं पी। उस समय पिता के साथ अटक में उर्दू (सैनिक शिविर) में रहता था। एक दिन शिकार पर गया था, बड़ी थकान लगी तो एक शिकारी सेवक ने एक प्याला दी।" प्रायः इसी अवस्था में मुगल शाहज़ादों का विवाह भी हो जाता।

जहांगीर का कथन है कि पंजाब में गूजरों के प्रदेश में अकबर ने किला बनवाया और उसे गुजरात नाम दिया जो अब तक प्रचलित है।

अकबर प्रायः प्रचलित नामों को बदल देता। हिंदुस्तानी राग कुघरई का नाम उसने सुघरई कर दिया था। अपने बेटे दानियाल के नाम पर उसने खानदेश का नाम दानदेश कर दिया था। जहांगीर कहता है— (काबुल में) चैरी को 'गिलास' कहते थे। परंतु कहीं-कहीं 'गिलास' शब्द से छिपकली का बोध होता अतः अकबर ने इसका नाम बदल कर 'शाह आलू' कर दिया।

जहांगीर अकबर का बहुत आदर करता। जहांगीर खान आज़म से रुष्ट था और उसने उसे ग्वालियर के किले में बंद कर रखा था। जहांगीर लिखता है कि एक रात उसने स्वप्न में अकबर को देखा। स्वप्न में ही अकबर ने उसे आदेश दिया कि मेरे निहोरे ख़ान आज़म के अपराध क्षमा कर दो। जहांगीर ने इसे शिरोधार्य कर ख़ान आज़म को मुक्त कर दिया। (पृ० 269)

एक बार जहांगीर के पास काबुल से अनार और बदख्शां से खरबूज आए। जहांगीर लिखता है कि ये यज़्द और क़ारज़े के फलों का मुकाबला न कर सकते। इस बीच जहां-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गीर को अपने पिता की याद आई कि उस समय इन सुदूर स्थानों से हिंदुस्तान में फल न आते। अन्यथा उन्हें फलों का जैसा शौक था, वे इनसे बहुत ही प्रसन्न होते। (पृ० 270)

जहांगीर काल में अकबर की अनेक वस्तुएं अथवा प्राणी बच रहे थे। जहांगीर ने एक घोड़े का उल्लेख किया है। इसे ईरान के शाह अब्बास ने अकबर को उपहार में भेजा था। उसे देख कर सभी ने कहा कि ऐसा घोड़ा भारत भर में न होगा। बाद में जब अकबर ने अपने पुत्र दानियाल को दक्खन में खानदेश का प्रांत जागीर के रूप में दिया तो उसने आगरा लौटते समय दानियाल से प्रेमवश कहा 'जो इच्छा हो मांगो।' दानियाल ने मौका देखकर यही घोड़ा मांग लिया। फिर यह घोड़ा जहांगीर के हाथ आया। एक बार जहांगीर ने प्रसन्न होकर मानसिंह को इसे बख्श दिया।

जहांगीर लिखता है (पृ० 240) कि अकबर के पास एक हज़ार शिकारी चीते थे। पालतू चीते बच्चा नहीं देते। अकबर ने बहुत चेष्टा की कि इन पालतू चीतों की वंश-वृद्धि हो पर यह संभव न हुआ। जहांगीर के अनुसार एक बार एक मादा चीता गाभिन हुई तो उसके एक साथ तीन बच्चे हुए।

जहांगीर अबुल फ़ज़ल से नाराज़ था। उसने एक स्थान पर लिखा है कि अबुल फ़ज़ल आदि ने मेरे विरुद्ध पिता के कान भर दिए थे। उनका ऐसा खेल था कि मेरी अकबर से भेंट न हो सके और पारस्परिक मतभेद न दूर हो सके। नाराज सलीम के इशारे पर ओरछा के वीरसिंह देव ने अबुल फ़जल का रास्ते में ही काम तमाम कर दिया। फिर भी वह स्पष्ट शब्दों में कहता है: 'शेख अबुल फ़जल हिंदुस्तान के शेखों या शेखजादों में सर्व-श्रेष्ठ हैं। उनका ज्ञान और बुद्धि दोनों ही अभूतपूर्व हैं। ऊपरी तौर से उन्होंने स्वामि-भक्ति रूपी रत्न धारण कर रखा था।' यहां जहांगीर ने अपना पक्ष प्रस्तुत करते हुए अबुल फ़जल का जो चित्रण किया है, उससे ज्ञात होता है कि अबुल फ़ज़ल कोरे दार्शनिक न थे, वरन् तत्कालीन राजनीति में भी उनका महत्वपूर्ण स्थान था।

जहांगीर (भाग 1 पृ० 41-42) से ज्ञात होता है कि अकबर परंपरा का दास न था। गुजरात के सुप्रसिद्ध हमले में वह अपने साथ हाथी न ले गया था। उसके प्रतिद्वंद्वी मुहम्मद हुसैन मिरज़ा ने उसकी फौज़ का शोर सुना तो वह खोज लेने के लिए निकला। संयोगवश बादशाही फौज का सुभान कुली भी मिरज़ा की तैयारी की टोह लेने के लिए निकला था। नदी पर दोनों की भेंट हो गई। सुभान कुली ने बताया कि फतहपुर से फौज़ नौ दिनों में ही अहमदाबाद आ गई। मिर्ज़ा ने पूछा, 'इतने दिनों में हाथी कैसे आए?' सुभान अली ने उत्तर दिया, 'हाथियों की आवश्यकता क्या?' इस पर मिर्ज़ा को विश्वास ही न हुआ।

इसी युद्ध में लड़ाई के पहले एक अपशकुन हुआ: युद्ध के लिए प्रस्थान करने के ठीक पहले अकबर ने अपना शिरस्त्राण मंगाया। संयोग से उसका मुखपट्ट गिर गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोगों ने कहा, यह तो अपशकुन हुआ। छूटते ही अकबर ने उत्तर दिया, 'यह तो सर्वोत्तम शकुन है, इससे मेरा चेहरा प्रकट हो गया।'

युद्ध प्रारम्भ होने से पहले अकबर ने राजा भगवान दास से कहा, 'शत्रु असंख्य हैं, हम थोड़े हैं। अतः हम लोगों को एकजुट होकर आक्रमण करना होगा। खुले हाथ से मुट्ठी अधिक मज़बूत होती है।'

जहांगीर ने इस प्रसंग में एक विचित्र घटना का उल्लेख किया है। युद्ध प्रारंभ होने के एक दिन पूर्व अकबर तंबू में भोजन कर रहा था। वहां एक भविष्यवक्ता भी था। बादशाह ने उससे पूछा कि युद्ध का भविष्य क्या होगा ? उक्त भविष्यवक्ता ने कहा, 'विजय तो आपकी ही होगी, परंतु आपके प्रमुख सेनानायक का बलिदान होगा।' इस पर अकबर के एक सेनापति सैफ़ खां कोका ने कहा, 'भगवान करे, यह सौभाग्य मुझे ही प्राप्त हो।' संयोग की बात, अकबर की विजय तो हुई पर सैफ़ खां कोका वीरगति को प्राप्त हुए।

जहांगीर के वृत्तान्त से इस बात की पुष्टि होती है कि अनेक भारतीय (विशेष रूप से राजपूत) परंपराओं को ग्रहण कर अकबर ने अपने तुलादान भी कराए। ये उसके सौर और चांद्र जन्म तिथियों पर होते। स्वर्ण, रजत, अन्य धातुओं के साथ-साथ अन्न, वस्त्र आदि के तुलादान होते। फिर इन वस्तुओं को दान कर दिया जाता। जहांगीर के अनुसार तुलादान की वस्तुओं का मूल्य एक लाख रुपये होता। चांद्र वर्षगांठ को वे फारसी में वज़न-ए-कमरी कहते। यह परंपरा मुगल वंश में अंत तक चलती रही। इसी प्रकार मुगलों में हिंदू ज्योतिष के प्रति भी बहुत सम्मान था। हमें अकबर काल के ऐसे उदाहरण केवल चित्रों से ज्ञात होते हैं। ऐसे कई ऐतिहासिक चित्र प्राप्त हुए हैं जिनमें पुत्र जन्मोत्सव के अवसर पर हिंदू ज्योतिषी गणना करते हुए अंकित किए गए हैं। जहांगीर की आत्मकथा से इसकी पुष्टि होती है कि जहांगीर काल में हिन्दू ज्योतिष की बहुत मान्यता थी। स्वयं जहांगीर का प्रिय ज्योतिषी एक हिंदू था जिसे बादशाह ने जोतक (ज्योतिष) राय की पदवी दी थी। जहांगीर ने कई ऐसी घटनाओं का वर्णन किया है जिनसे पता चलता है कि 'जोतक राय' की भविष्यवाणियां कैसी सटीक निकलीं।

जहांगीर के आत्मचरित से ज्ञात होता है कि बालक शाहजहां (खुर्रम) अकबर को बहुत प्रिय था। संभवतः अकबर ने ही उसे यह नाम (खुर्रम-आनन्ददायक) दिया था। अकबर सलीम (जहांगीर) से प्रायः कहा करता, 'तुम्हारे अन्य लड़के इसकी बराबरी नहीं कर सकते।' जहांगीर यह भी लिखता है कि अकबर इन सभी भाई-बहनों से बहुत हिला मिला था। फिर भी उपर्युक्त से प्रकट होता है कि अकबर की पैनी दूरदृष्टि ने भावी शाहजहां को पहचान लिया था। जहांगीर लिखता है कि बालक खुर्रम (शाहजहां) दिन और रात अकबर के साथ रहता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अकबर की मृत्यु के बाद एक मनोरंजक घटना हुई, जिसका उपर्युक्त संदर्भ में जहांगीर ने उल्लेख किया है। 1615 में जब ख़ुर्रम ने महाराणा अमरसिंह को संधि के लिए विवश किया तब उसने अपने पिता, जहांगीर को एक अद्भुत लाल भेंट किया। जहांगीर की बड़ी इच्छा थी कि उस लाल की टक्कर के मोती का जोड़ा मिल जाय तो उसे बांह में पहना जाय। कुछ समय में एक मोती तो मिल गया परंतु उसका जोड़ कठिन था। तब ख़ुर्रम ने बताया कि ऐसा ही एक मोती अकबर की पगड़ी में टंका था। अतः वह पगड़ी मंगाई गई। उसमें से जो मोती निकला वह ठीक जोड़ी का था। दोनों मोतियों में इतनी समानता थी कि जौहरी भी आश्चर्यचकित रह गए।

मुगल वंश की परंपरा में, अकबर भी प्रकृति प्रेमी था। जहांगीर के वृत्तान्त से प्रकट होता है कि मालवा के शेखूपुर नामक गांव के निकट एक विशाल वट वृक्ष था। यह 128 हाथ ऊंचा था, इसका तना साढ़े अठारह गज़ के घेरे में था। एक बार अकबर उसके पास से गुज़रा। उसकी आज्ञा से इस वट वृक्ष की एक शाखा को, जो चालीस गज़ लंबी थी, हाथी के दांत का आकार दे दिया गया। इसके अतिरिक्त भूमि के पौने चार गज़ की ऊंचाई पर अपने हाथ की छाप भी उसने तने पर अंकित करा दी। बाद में जब जहांगीर उधर से गुज़रा तो उसने भी वृक्ष के तने पर आठ गज़ की ऊंचाई पर अपने हाथ की छाप अंकित करा दी। [पृ० 360]

कांगड़ा से 'हिंदुस्तान' [दो-आब] की ओर लौटते समय जहांगीर ने चिनार का एक वृक्ष देखा तो उसे अकबर काल की घटना स्मरण हो आई, जहांगीर के ही शब्दों में :

'नरपुर से ढाई कोस पर, [खेलपुर गांव में] एक चिनार-वृक्ष है। इसका भीतरी भाग जला हुआ है। पच्चीस वर्ष पहले मैं पांच घुड़सवारों तथा दो पैदलों के साथ उसके तने के भीतर खड़ा हो गया था। इस घटना को लोगों से कहता तो उन्हें आश्चर्य होता। इस बार मैं इस ओर से निकला तो मैंने लोगों को इसके अंदर घुसने के लिए आज्ञा दी। वस्तुतः मेरे पिता स्वयं चौंतीस आदमियों के साथ इसके अंदर चले गए—वे सभी एक दूसरे से सटकर [आसानी से] खड़े हो गए।' [सारांश]

इसी प्रकार अकबर काल की एक [परंपरागत] बुराई को भी ज़हांगीर ने रोका। जब बादशाह किसी को हाथी या घोड़ा इनाम में देता तो नकीब और अश्वाध्यक्ष [मीर आख़ुरान] उक्त व्यक्ति से कुछ द्रव्य 'रास-थमाई' के रूप में लेते। जहांगीर ने उक्त 'रास थमाई' का व्यय सरकारी खजाने के जिम्मे कर दिया क्योंकि इसके अंतर्गत लोगों से बहुत रुपया ऐंठ लिया जाता।

खंभात के बंदरगाह के संबंध में लिखते हुए जहांगीर न उल्लेख किया है कि यहां अकबर ने शहरपनाह बनवा दी थी अतः बहुत से व्यापारी एकत्र हो गए थे। वहां गुजराती सुलतानों की परंपरा में बहुत अधिक ज़कात लिया जाता। अर्थात् अष्टमांश या

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दशमांश लिया जाता। इसके अतिरिक्त लोगों को बहुत हैरान भी किया जाता। इस प्रसंग में जहांगीर अरब की ज़द्दा नामक बंदरगाह का भी हवाला देता है, जहां चतुर्थांश अथवा पंचमांश तक ज़कात ले लेते। परंतु जहांगीर ने खंभात के ज़कात को घटाकर चालीसवां भाग कर दिया।

अकबर की मृत्यु के संबंध में एक मत यह है कि उसे सलीम के षडयंत्र से, विष दिया गया जिसने अकबर के प्राण ले लिए। परंतु प्रायः यही माना जाता है कि अकबर की मृत्यु अतिसार से हुई। जहांगीर की आत्मकथा इस विषय में सर्वथा मौन है। यह स्वयं आश्चर्य की बात है। परंतु जहांगीर की आत्मकथा में ऐसे अनेक लोगों की मृत्यु का उल्लेख है जो अतिसार से मर गए। इससे यह प्रकट होता है कि आरंभिक काल में अतिसार का प्रकोप बहुत बढ़-चढ़ कर था। इसके अतिरिक्त जहांगीर की आत्मकथा से यह भी ज्ञात होता है कि तपेदिक का काफी प्रकोप था। इन कारणों से प्रायः लोग साठ-सत्तर की अवस्था में चल बसते। अकबर की भी मृत्यु के समय इसी के आस-पास अवस्था थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार